प्रेरणापुरुष

सुमित्रानन्दन पन्त

राजाराम शुक्ल

राजाराम शुक्ल

जनवरी 1934

रनी, जिला—प्रतापगढ़

वास—214/180ए/4 ए—नागवासुकि,
दारागंज इलाहाबाद—उ० प्र०

श्री सत्यनारायण शुक्ल

० श्रीमती सरजू देवी

नाएँ—कैवल्य (खण्ड काव्य) गंगायतन
था (प्रबन्ध काव्य) अतृप्त (उपन्यास)
त संकलन

सुमित्रानन्दन पन्त" संस्मरण-समीक्षा
—'अब तो नींद खुले' (नाटक) 'पाँखुरी'
, अपनी, 'गंगा के तट पर' 'काव्य संग्रह'
, संगम, काव्य की नई प्रतिभाएँ, इन्द्र
जैन बालादर्श, मधुपर्क, तथा भारतीय
ओं एवं काव्य संकलनों में प्रकाशित

त्या पुरस्कार (कलकत्ता) कावेरी संस्था,
रिषद प्रयाग, तरुण साहित्यकार परिषद,
ठी संस्थापक निवास प्रतापगढ़, तारिका
म, राष्ट्रीय रामायण मेला चित्रकूट धाम

ालय

प्रेरणा पुरुष सुमित्रानन्दन पन्त

(संस्मरण-समीक्षा)

राजाराम शुक्ल

सहयोगी मुद्रण तथा प्रकाशन
सहकारी समिति लि०
२१४/१८० ए/४ ए, नागवासुकि, दारागंज इलाहाबाद ६

प्रेरणा पुरुष सुमित्रानन्दन पन्त

प्रकाशक :
सहयोगी मुद्रण तथा प्रकाशन सहकारी समिति लि०
२१४/१८० ए/४ ए, नागवासुकि, दारागंज,
इलाहाबाद–२११००६

□

वितरक :
साहित्य संगम
१००, नया लूकरगंज इलाहाबाद–२११००१

□

आवरण : शिव गोविन्द पाण्डेय

□

□

प्रथम संस्करण : १९९६

□

मूल्य : पचहत्तर रुपए मात्र

□

मुद्रक :
अभय कुमार जायसवाल
मिलन प्रिंटिंग प्रेस
233. नया ममफोर्डगंज इलाहाबाद

अपने

काव्य-गुरु

महाकवि, महामानव

पंडित सुमित्रानन्दन पन्त

की स्मृति में

□

बरसो हे ! ज्योतिमय जीवन !

पन्त जी का स्वप्नदर्शी काव्य-जीवन युगान्तरकारी होकर जिया तथा बहुतो को काव्य-प्रेरणा देता रहा। उनकी प्रगाढ़ मानवीय दृष्टि गाँधीवाद, अरविन्दवाद, मार्क्सवाद और न जाने कितने ऐसे वादों के भीतर पैठती हुई जीवन के चिरन्तन प्रकाशमय रूप को शब्दबद्ध करने में लीन रही और अन्ततः ऐसी उच्चतर भूमि पर पहुँच गयी जहाँ हिमालय की उच्चता तथा समुद्र की गहराई एक साथ परिलक्षित होने लगी। भावना और विचार का जितना विस्तार अपने बहुरंगी काव्यानुभव में पं० सुमित्रानन्दन पन्त ने सहेजा-समेटा उतना कदाचित् किसी अन्य हिन्दी कवि के द्वारा संभव नहीं हुआ।

सन् १९५४ में मेरे द्वारा सम्पादित 'नयी कविता' नामक अर्द्धवार्षिक पत्रिका के प्रथम अंक में जिन शब्दों में 'नये मनुष्य की प्रतिष्ठा' का संदेश दिया वह मुझे निरन्तर प्रेरणा देता रहा। 'कला और बूढ़ा चाँद' उनके उसी सद्भाव की मानसी सृष्टि है जो 'परिवर्तन' के 'वासुकि सहस्र फन' वाले स्वरूप की याद दिलाती है जिसके पार्श्व में मैं स्थायी रूप से रहने लगा हूँ। गृह-प्रवेश पर पन्त जी और महादेवी जी दोनों मेरे नव-निर्मित निवास कृपापूर्वक पधारे थे जिसे मैं कभी भूल नहीं सकता।

साहित्यकार संसद, भारती-भंडार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडेमी तथा हिन्दी-विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के न जाने कितने संदर्भों मे पन्त जी हम लोगों के बीच एक प्रेरणा-स्रोत की तरह विद्यमान रहे। २८ दिसम्बर १९७७ को वे दिवंगत हो गये तो विश्वास नहीं होता कि वे सचमुच नहीं रहे। निराला, पन्त, महादेवी की त्रिवेणी इस प्रयाग को साहित्यिक तीर्थ के रूप मे मान्य रहेगी। विश्वास का वट-वृक्ष हमारे भीतर प्रत्येक तरु पल्लव पर 'पल्लव' के रचयिता की स्मृति जगाता रहेगा।

छायावादी कवियों में वे निराला के प्रतिलोम थे। पन्त जी ने अपने महाकाव्य 'लोकायतन' में प्रतीक रूप से अपने मनोभावों को व्यक्त कर ही दिया है।

डा०   सिंह सुमन ने महादेवी को नारीत्व का और निराला को पौरुष का प्रतीक माना है। एक विशेष अवसर पर उन्होंने पन्त जी को दोनों का सम्मिलित रूप कह दिया है, जिसकी गहरी व्यंजना सबने समझ ली और अट्टहास कर उठे।

काव्य का शायद ही ऐसा कोई रूप हो, जो पन्त जी की लेखनी से अछूता रह गया हो। 'वीणा' की झनकार से जो स्वर फूटा वह 'ज्योतिमय जीवन' बनकर 'सत्यकाम' की औपनिषदिक यात्रा तक निरन्तर बरसता रहा। बादल की मेघदूती कल्पना कालिदास, निराला और पन्त तीनों को एकात्म बना देती है।

मानवता के प्रति जितनी शुभाशंसाएँ सुमित्रानन्दन पन्त ने व्यक्त की उतनी युगों तक कोई दूसरा कवि शायद ही कर सके। मेरी दृष्टि में वे आदि से अन्त तक प्रकृति के प्रति विस्मय, संस्कृति के प्रति सद्भाव तथा मानवता के प्रति मंगल कामनाओं के अद्वितीय कवि थे, जिनका अन्तर्वाह्य जीवन सदा एक-सा बना रहा। गृहस्थ जीवन न अपना कर भी वे गृहस्थ बने रहे, संन्यासी न होकर भी निर्लिप्त जीवन बिताते रहे। बिना गैरिक वस्त्र धारण किये निस्पृह भाव से रचना-कर्म में संलग्न रहे। स्वर्गीय वाचस्पति पाठक का स्मरण करना मैं नहीं भूल सकता क्योंकि उन्होंने पन्त जी की कितनी ही रचनाओं का आवरण-चित्र बनाने का दायित्व दिया जिसके सदर्भ में मुझे पन्त जी के और भी निकट आने का अवसर मिला। यही नहीं 'लोकायतन' की वास्तु-कल्पना को साकार करने में भी पन्त जी ने मुझसे परामर्श लिया पर वह फलित नहीं हुआ।

'परमिल' के रजत-जयन्ती-पर्व का उद्घाटन करते हुये महिला विद्यापीठ के सभागार में श्री० बी० पी० कोइराला के साथ अध्यक्ष डॉ० शिवप्रसाद सिंह और विशिष्ट अतिथि के रूप में श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री सुमित्रानन्दन पन्त तथा इलाचन्द्र जोशी समासीन थे।

जैसे इलाहाबाद में सन् ४४ में 'परिमल' की स्थापना निराला जी की काव्य रचना 'परिमल' से प्रेरित मानी गयी, उसी तरह पन्त जी के अनुवर्ती विश्वम्भर मानव जी आदि के द्वारा 'गुंजन' की स्थापना की गयी, जो बहुत दिनों तक इलाहाबाद में सक्रिय न रह सकी, क्योंकि इस तरह का विभाजन इलाहाबाद की साहित्यिक प्रकृति में नहीं था।

राष्ट्रीयता का समादर करते हुये भी पन्त जी ने संघर्ष में सक्रिय भाग नहीं लिया, जैसा पं० माखनलाल चतुर्वेदी एवं नवीन जी ने लिया। 'ग्राम्या' लिखकर भी वे ग्राम संस्कृति से पूरी तरह एकात्म नहीं हो सके। उनका नागर संस्कार मैथिलीशरण गुप्त की तरह ग्राम जीवन को सर्वोपरि नहीं मान सका। पन्त जी ने भारत के शरीर पर गाँवों को व्रणतुल्य माना जिससे सब लोग सहमत हों यह

नहीं पन्त जी की सौम्य-सुकुमार आकृति गरिमामय स्नेही प्रकृति माथे पर लहराती अलक और कानो के ऊपर तक आच्छादित केशराशि उनके स्वरूप को चित्रात्मक बना देती है। मैंने उनकी इसी छवि का रूपांकन किया जो 'सगम' के पन्त-विशेषांक में प्रकाशित हुआ। इलाचन्द्रजोशी पन्त जी को सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे। उनकी यह दृष्टि केवल पर्वतीय संस्कारों तक सीमित नहीं थी।

मेरे चित्रकर्म ने पन्त जी से निरन्तर प्रेरणा पायी। मेरी पहली एकल चित्र-प्रदर्शनी का उद्‌घाटन हिन्दी विभाग में डॉ० धीरेन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में पन्त जी ने ही किया। मेरी रेखाओं की लयात्मकता पन्त जी को इतनी प्रिय लगी कि मेरे भीतर वह अर्थ की लय बनकर प्रकट हुई जिसे मैं काव्यशास्त्रीय चिन्तन की उपलब्धि मानता हूँ। पन्त जी और धीरेन्द्र जी हिन्दू छात्रावास में एक साथ रहे और दोनों की आत्मीयता जीवन-व्यापी सिद्ध हुई। भले ही दोनों की दिशाएँ भिन्न हो गयीं। मेरे प्रथम काव्य संग्रह 'नाव के पाँव' पर उन्होंने जो पंक्तियाँ लिखीं वे नीर के विस्तार के भीतर हृदय की अनजानी गहराइयों का संस्पर्श कर सकीं।

पन्त जी ब्रजभाषा के प्रति वैसे संवेदनशील नहीं थे जैसे प्रसाद, निराला एवं महादेवी जी थीं। उन्होंने पल्लव की भूमिका में ब्रजभाषा के कवियों की तुलना बूढ़े साँपों को नचाने वाले मदारी से की। किन्तु ब्रजभाषा को ही काव्य की भाषा मानने वाले और खड़ी-बोली के उत्कट विरोधी रसाल जी से उनकी संगति ज्योतिष की भूमिका के कारण सदा बनी रही। नरेन्द्र शर्मा भी ज्योतिष पर असाधारण विश्वास रखते थे। पन्त जी ने उनकी इस कारण विशेष सराहना भी की। मुझे याद है कि 'एडेलफी' में बच्चन जी के साथ अनेक वर्षों तक पन्त जी रहे और वहाँ नरेन्द्र शर्मा, अंचल जी, भारती जी और हम सब बराबर आते जाते रहे।

भारती जी और कांता जी का वैवाहिक सम्बन्ध बम्बई जाकर ऐसा विच्छिन्न हुआ कि वह कभी एकात्म भाव नही पा सका। जिस तरह बाल्मिकि ने सीता को अपने आश्रम में स्थान दिया वैसी ही करुणा मैंने पन्त जी के भीतर पायी। कान्ता जी को आकाशवाणी में स्थान दिलाकर पन्त जी ने 'रेत की मछली' को फिर से जीवन प्रवाह के समीप ला दिया। उनकी गहरी मानवीयता का यह अद्वितीय उदाहरण है जिसे मैं कभी भूल नहीं सकता। गंगाप्रसाद पांडेय जी ने निराला जी को महाप्राण कहा और महादेवी जी को महीयसी और उसी क्रम में मैं पन्त जी को 'महामानव' कहना सही मानता हूँ।

कालाकाँकर जाकर मैंने वहाँ के राजमहल के समीप गंगा का स्वरूप देखा जिसने पन्त जी को काव्य-प्रेरणा प्रदान की। कालाकाँकर के राजभवन का निश्चिन्त रूप जिसने नहीं देखा वह पन्त की काव्य चेतना का स्वरूप नहीं समझ

संकेता। 'नक्षत्र' नाम उस आवास का है जहाँ पन्त जी वर्षों तक काव्य रचना करते रहे। उनका एकाकीपन कितनी कविताओं में प्रतिफलित हुआ यह कालाकाँकर की भूमि ही बता सकती है।

शांति जोशी ने 'सुमित्रानन्दन पन्त जीवन और साहित्य' लिखकर जो उपकार किया है उसने पन्त जी के व्यक्तित्व को सबके आगे उजागर कर दिया। 'सुमिता' नामक कन्या गोद लेकर पन्त जी ने अपने वात्सल्य को सजीव रूप दे दिया। आज वह उनकी सजीव स्मृति के रूप में पहचानी जायेगी, यानी सुमिता ही पन्त जी की अस्मिता हो गयी। छायावाद का पुर्नमूल्यांकन लिखकर स्वयं पन्त जी ने भी अपनी काव्य-दृष्टि को विशद और विवेकशील रूप दिया। बहुत सी विसंगतियाँ, बहुत से अंतर्विरोध और बहुत सी समस्याओं का समाधान पन्त जी ने स्वयं करने की चेष्टा की। मुझे याद है यह आयोजन हिन्दी विभाग में महादेवी जी की अध्यक्षता में हुआ जिसे पन्त जी ने विभाग को न देकर 'लोकभारती' से प्रकाशित करा दिया।

कवि श्री राजाराम शुक्ल ने पन्त जी से ऐसी प्रेरणा पायी कि आज वह संवेदनशील जीवन-वृत्त एवं समीक्षात्मक रचना के रूप में प्रकाशित हो रही है। प्रेरणा-पुरुष से आरम्भ करके अंतरंग स्मृतिपट तक पहुँचने का जैसा उपक्रम शुक्ल जी ने किया वह आत्मीयता से सुवासित और बहुवर्णी छवि प्रकट करता है। कृतियो का आकलन करते हुए शुक्ल जी ने समीक्षकों की दृष्टि में उन्हें प्रस्तुत करने का साहस किया है। शुक्ल जी का काव्य-विवेक, स्वानुभव और सृजनशीलता के साथ अध्ययनशीलता को प्रमाणित करता है। एक युग-प्रवर्तक के रूप में पन्त जी का आकलन मुझे संतोषप्रद लगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

इधर प्रगतिशीलों द्वारा निराला जी की अतिशय प्रशंसा और उन्हें तुलसीदास को भुलाकर कबीर से विशेष सिद्ध करना असंतुलित कहा जा सकता है। पन्त जी के विषय में शुक्ल जी का यह आकलन एक संतुलन की आकांक्षा रखता है। मैं शुक्ल जी को इस संवेदनशील, काव्य-समीक्षा-ग्रन्थ के लिए हार्दिक साधुवाद देता हूँ। मुझे विश्वास है कि पन्त-काव्य के प्रति निष्ठा रखने वाले काव्य-चिन्तक इसका समुचित सम्मान करेंगे।

—(डॉ०) जगदीश प्रसाद गुप्त
भू० पू० अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद, विश्वविद्यालय

१८१-ए/१
नागवासुकि
प्रयाग

दो शब्द

आस्था के बीज कब प्रस्फुटित होकर वटवृक्ष बन जायँ, कोई नहीं कह सकता। मेरी समझ में सम्पूर्ण जगत ही आस्था के बीज का प्रस्फुटन है। यही आस्था का बीज 'प्रेरणा पुरुष सुमित्रानन्दन पन्त' के रूप में आज आपके सामने कृति के रूप से प्रस्तुत है। इसकी शीतल छाँह, इसकी संवेदनशीलता मुझे निरन्तर काव्य-प्रेरणा देती रही और सृजन के कुछ क्षण सम्भवतः 'पन्त' के आशीष के प्रतिफल हैं।

सम्पूर्ण मानव जाति किसी न किसी विचार प्रवाह के बीच ही संतरण कर रही है। हर कोई किसी न किसी के आचार या विचार से ही प्रेरित है। विचारो की लिपिबद्ध शृंखला ही हमारे सामने नीति, आदर्श या दर्शन के रूप में हमारा मार्ग दर्शन करती है।

'महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त' का साहित्य, उनका जीवन तथा आचार भारतीय मनीषा का मंजुल उपहार है। संघर्षों के युग में रहकर, विभिन्न विचारो गुटो और दलगत नीतियों के झंझावातों को सहकर भी वे सर्वदा अविचलित रहे। भारतीय भावभूमि की त्रिवेणी को उन्होंने प्रदूषण से बचाया।

आज हमारे साहित्य में तरह-तरह के प्रयोग हो रहे हैं। कविता और कहानी मे संस्कृतियों के घाल-मेल से अपना स्वरूप ही बदलता जा रहा है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो हो सकता है हम कभी अपनी पहचान ही खो बैठें। हमारे सामने आज अपने पहचान को अक्षुण्ण बनाये रखने का संकट है।

मैं यह नहीं कहता कि आज के इस वैज्ञानिक युग में जब दुनिया सिमट कर टी० वी० के परदे में संकलित हो गई है, हम विश्वचेतना से विमुख रहे। किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि परिवर्तन की इस लहर में हम कहीं खो न जायँ। हमे अपने को सचेत रखना पड़ेगा। साहित्य-संगीत और कला का क्षेत्र आज अनेक झझावातों से प्रभावित है। हमें देखना है कि इस झंझावात में हमारे स्नेह का दीपक कहीं बुझ न जाय।

प्रकृति ने विश्व के महान् भूखण्ड में अपना विविध स्वरूप प्रकट किया है। प्रत्येक भूखण्ड, प्रदेश या देश अपनी विशेषता रखता है और यही विशेषता उसकी पहचान है। भारत-भूमि की अपनी विशेषता है, और हमें अपनी इस विशेषता को बचाए रखना है। सदियों की राजनीतिक, आर्थिक या सांस्कृतिक दासता ने हमे अपनी भूमि या मातृभूमि से भी विलग कर दिया है। ऐसे समय में हमें संस्कृति के उन सूत्रों का सहारा लेना है, जिनमें हमारे मानस के मोती पिरोए

महाकवि पन्त के साहित्य मे इन्ही मोतियो के सुगन्धित पुष्प सग्रहीत हैं भाषा का सस्कार, वाणी का तप और अपनी सस्कृति की पहचान, यदि हमे करनी है तो हमें पन्त-काव्य-जगत् से परिचित होना चाहिये।

'पन्त' के जीवन और साहित्य के विषय में अनेक लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकारो ने अपनी लेखनी को धन्य किया है। इसी शृंखला में एक कड़ी मैं भी जोड़ रहा हूँ। इस छोटी सी श्रद्धांजलि में मैंने अनेक साहित्यकारों और समीक्षकों की पन्त विषयक दृष्टि को समेटने का प्रयत्न किया है, जिससे सुधी पाठकों को एक ही जगह पन्त के अनेक पक्षों का संज्ञान हो सके। जीवन-वृत्त, अन्तरङ्ग-स्मृतिपट, कृतियाँ, पन्त, समीक्षकों की दृष्टि में, एवं युग-प्रवर्तक, पाँच शीर्षकों में विभक्त यह श्रद्धा-सुमन, यदि रचनाकारों और पाठकों को कुछ दे सके, तो मैं अपने प्रयास को सफल मानूंगा।

श्रद्धा की इस सुमिरनी में मुझे जिन मोतियों का सहारा मिला है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा धर्म है। सुश्री शांति जोशी की पुस्तक 'सुमित्रानन्दन पन्त जीवन और साहित्य' तथा कालाकाँकर के कुँवर सुरेश सिंह की पुस्तक, 'पन्त जी और कालाकाँकर' ने मुझे पन्त विषयक प्रभूत सामग्री दी है। पन्त जी की जितनी सेवा, साहचर्य का संयोग इन दोनों विभूतियों को मिला, शायद उतना और किसी दूसरे को नहीं मिला। मैं इनका आभारी हूँ।

मुझे सन् १६६६ का वह दिन स्मरण है, जब मैं पन्त जी के आशीष से अभिषिक्त अपनी प्रथम पुस्तक 'कैवल्य' खण्डकाव्य लेकर डॉ० जगदीश गुप्त के आवास पर अपने मित्र श्री रामकृष्ण द्विवेदी जी के साथ पहुँचा था। परिचय के उस प्रथम मिलन में अपनी कोई पहचान नहीं थी, किन्तु संयोगवश मेरा आवास भी आज डॉ० जगदीश गुप्त के पास ही स्थित है। आवासीय निकटता के साथ लेखकीय निकटता भी बढ़ती गई और 'प्रेरणा पुरुष सुमित्रानन्दन पन्त' के लेखन में उनका भरपूर सहयोग मिला। उन्होंने इसकी भूमिका लिखने की कृपा की। मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान संस्थान, कुल्लू हिमांचल के संस्थापक गुरुवर्य स्वामी श्याम का मैं आभारी हूँ जिन्होंने इस कृति के लिए अपना आशीष दिया। डॉ० रामकिशोर शर्मा ने इस पुस्तक पर अपनी सम्मति दी है, एतदर्थ मैं उनका भी आभारी हूँ।

इस पुस्तक में जिन साहित्यकारों या समीक्षकों की समीक्षाएँ या संस्मरण संकलित हैं, उन सबका मैं आभारी हूँ। पन्त जी के विशाल साहित्यिक वैभव की समीक्षा और उनके मानवीय अवदानों की प्रतिष्ठा मेरी दो आँखों और एक लेखनी के वश के बाहर की बात है, अतः मुझे उन्हें देखने और लिखने के लिए अनेक दृष्टियो का सहारा लेना पड़ा। आशा है मेरे इस प्रयास को सुधीजन आशीष देंगे।

—राजाराम शुक्ल

जीवन वृत्त

'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे' जीवन भी आत्मा की भाँति शाश्वत एवं अमर है क्योंकि जब तक प्राण है तभी तक जीवन है, और प्राण एवं आत्मा एक दूसरे के पर्याय हैं। शरीर धारण करने पर 'आत्मा' एक कालखण्ड, इतिवृत्त में बँध जाती है और यही इतिवृत्त किसी का जीवनवृत्त है। महाकवि सुमित्रानन्दन जी का जीवनवृत्त भी, जन्म २० मई १६०० से लेकर निर्वाण तिथि २८ दिसम्बर १६७७ के कालखण्ड में बँधा है। किन्तु इस सत्तहत्तर वर्ष के कालखण्ड का उनका क्रिया-कलाप, साहित्यिक एवं मानवीय अवदान, अखण्ड एवं कालातीत हैं।

महामानवों, मनीषियों, चिन्तकों एवं ऋषियों की भाँति पन्त, का जीवन भी, वैराग्य, आत्मचिन्तन, सृजन एवं लोक कल्याण के सोपानों से अग्रसर होता हुआ, महाकाश में समाहित हो गया, जहाँ से स्फुरित प्रकाश किरणें अब भी लोक जीवन को मङ्गलकामना देती रहती हैं। तथापि उनके जीवन-काल की कुछ विशिष्ट बातें जान लेना आवश्यक है।

माँ सरस्वती एवं पिता पं० गंगादत्त के सपूत सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म २० मई १६०० को अल्मोड़ा जिले के कौसानी ग्राम मे हुआ। प्राकृतिक छटा से परिवृत्त, शैलशिखर-मण्डित, रम्य स्थली में सद्यः प्रसूत पन्त को माँ सरस्वती की गोद की छाँह केवल छह घण्टे ही मिल सकी, किन्तु जन्मदात्री माँ 'सरस्वती' के रूप मे कवि पन्त के प्राणों में प्रतिष्ठित हो गईं और उन्हें आजीवन रससिक्त काव्यसुधा पिलाकर अमरत्त्व दे गईं।

माँ का पीयूष दुग्ध इन्हें अपनी फूफी से मिला और उन्हीं की गोद में इनका लालन-पालन हुआ। सहोदर के रूप में चार भाई और चार सहोदरायें थी। पन्त अपने भाइयों में सबसे छोटे थे। कोमल कृशकान्त, मसृण शरीर, प्राकृतिक परिवेश मे पल्लवित होता रहा। पर्वतीय उपत्यकाओं की बयार, अपने शीतल स्पर्श से इन्हे गुदगदाती रही, सुगन्धित पुष्पवृन्त, सुकुमार लतिकाएँ, पर्वतीय वीथिकाएँ, और नीहारिकाएँ, उन्मुक्त शिशु को दुलारती एवं पुचकारती रहीं। प्रकृति ही सुकुमार पन्त की माँ थी प्रकृति का यही प्यार-दुलार पन्त के प्राणो मे रच बस गया और

इसी की प्रेरणा ने इन्हें प्रकृति के अप्रतिम कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर आजीवन आत्मतोष से आप्लावित किया।

परिवारीय संस्कारानुसार बालक पन्त का नामकरण 'गुंसाईदत्त' हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा कक्षा चार तक कौसानी में ही हुई। उच्चतर शिक्षा के लिए इन्हे अल्मोड़ा आना पड़ा। अल्मोड़ा में इनका तिमंजिला पैतृक मकान था। इसमे पैंसठ कमरे थे। इनके पिता पंडित गंगादत्तजी ने अपनी इस सबसे छोटी प्रिय सन्तान को दीर्घायुष्य की कामना से एक गोस्वामी हरिगिरि बाबा को अर्पित कर दिया, जिनका आशीर्वाद उन्हें मिला। बाबा हरिगिरि ने पन्त जी के गले में एक रुद्राक्ष बाँध दिया, जिससे उन्हें नैरुज्य मिले। इनके पिता कौसानी के चाय बागान के मैनेजर थे। पन्त के बड़े भाई श्रीरघुवरदत्त, प्रिन्स कहलाते थे। वह बड़े राजसी ठाट-बाट से रहते थे।

'सुश्री शांति जोशी' के अनुसार, 'वैसे भी वे सभी के लाड़ले थे—सौम्य स्वभाव, मोहक व्यक्तित्त्व का वह सबसे छोटा बालक सभी का प्रिय था। १९०७ से १९०९ ई० के बीच, नव वर्ष की आयु में ही पन्त जी ने, अमरकोष, मेघदूत, चाणक्य नीति, के अतिरिक्त अनेक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। संस्कृत एव फारसी के अध्ययन के अतिरिक्त अंग्रेजी और उसी के साथ संगीत भी सीखने लगे।' इसी समय इन्हें अपने नाम परिवर्तन की सूझी और इन्होंने गोसाईंदत्त की जगह अपना नाम 'सुमित्रानन्दन पन्त' रख लिया। सन् १९११ में पन्त जी का उपनयन संस्कार हुआ, किन्तु कुछ दिनों के बाद ही इन्होंने जनेऊ उतार दिया। सम्भवत इसी कारण यह गृहस्थी के गुरुतर बन्धनों से विलग और स्वच्छन्द रहे।

सन् १९१८ में एक वर्ष के लिए वाराणसी गए और वहीं जयनारायण हाईस्कूल से स्कूल लीविंग सर्टीफिकेट लिया, जुलाई सन् १९१९ में म्योर सेन्ट्रल कालेज में नाम लिखाकर हिन्दूबोर्डिंग हाउस में रहने लगे। सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में गाँधी जी आए और उन्होंने एक सभा की, असहयोग आन्दोलन की इस सभा में पन्त जी भी खद्दर का कुर्ता-पायजामा पहिनकर सम्मिलित हुए। गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन में शामिल होने वाले युवकों से हाथ उठाने को कहा, इस सभा में पन्त जी के बड़े भाई भी थे, उन्होंने पीछे से इनका हाथ पकड़कर उठवा दिया और तभी से यह गाँधी जी के साथ असहयोग एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन के अनुयायी हो गए और इन्टर परीक्षा के पूर्व ही इनकी पाठशालीय शिक्षा समाप्त हो गई।

उच्चतर शिक्षा एवं डिग्रीधारी न होने के कारण नौकरी का द्वार बन्द हो गया और यहीं से इनके संघर्ष एवं सृजन का युग प्रारम्भ हुआ। परिवार से समुचित सहायता के अभाव में पन्त जी को आर्थिक संघर्ष का जीवन बिताना पड़ा। अपना

घर न होने के कारण एव सनेदनशील व्यक्तित्ववश इन्हे कही न कही मित्रो के साथ रहना पड़ा। इसमें विशेष रूप से उल्लेखनीय निम्नांकित साहचर्य हैं--

'कालाकाँकर के राजा सुरेश सिंह के साथ 'नक्षत्र' में सन् १६३१ से ४१ तक रहे। यही काल उनके जीवन के साहित्य सृजन की उर्वर भूमि है। 'नक्षत्र' से गंगा की रूपराशि, वर्तुल लहरें, नौका विहार एवं ग्राम्य जीवन इन्हें सर्वदा प्रेरित करते रहे और इस काल में अनेक सुन्दर रचनाओं का प्रणयन हुआ। सन् १६३६ से ४० तक श्री नरेन्द्रशर्मा जी के भी साथ रहे। श्री हरिवंश बच्चन के साथ इनका समय १६४१ से १६४३ तक रहा। सन् १६४३-४७ के काल में इन्हें नर्तक उदयशंकर का सहयोग मिला था। अर्थकृच्छता एवं संगीत-नाटक की अभिरुचि के कारण पन्त जी उदयशंकर के थियेटर की ओर आकृष्ट हुए जहाँ इन्हें पारिश्रमिक स्वरूप मानदेय भी मिलता था। इन्ही के साथ इनकी यात्रा मद्रास एवं बम्बई भी हुई, किन्तु कुछ दिन बाद इन्होंने उदयशंकर की कम्पनी भी छोड़ दी, यद्यपि उन्होंने इनमे बहुत आग्रह किया। श्री कृष्णानन्द पाण्डे के साथ सन् १६४८ से ४६ तक रहे और बीच मे जब कालाकांकर से प्रयाग आते थे तो श्री रामचन्द्र टंडन का आतिथ्य स्वीकार करते थे।

यह काल एक प्रकार से इनके यायावर जीवन का काल था, जिसमें इन्होने संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए काव्य की अनेक उज्जवल सम्भावनाएँ अर्जित की। इसी अवधि में इनका साक्षात्कार महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी और महर्षि अरविन्द सदृश महान् विभूतियों से हुआ। यह काल इनकी अन्तश्चेतना के स्फुरण का स्वर्णिम संस्पर्श था। पी० सी० जोशी सदृश मित्रों ने इन्हें मार्क्सवाद के अध्ययन की ओर भी उन्मुख किया और सर्वहारा संस्कृति की आर्थिक एव सामाजिक परिस्थितियों से इनका सरोकार हुआ।

संकट के समय में सज्जनों की सहायता हेतु ईश्वरीय अनुकम्पा भी होती है। ऐसा ही अवसर इन्हें श्री बालकृष्ण राव के सहयोग से मिला, जिन्होंने उन्हे आकाशवाणी से सम्बद्ध किया। इस काल में इन्हें दिल्ली आकाशवाणी से सम्बद्ध रहते हुये एक हजार रुपये का मानदेय मिलता था, किन्तु दिल्ली अधिक दिन न रहने के कारण इलाहाबाद आकाशवाणी का कार्य देखने पर यह मानदेय पाँच सौ रुपये रह गया। सात वर्ष तक उन्होंने हिन्दी मुख्य प्रोड्यसर के रूप में कार्य किया और उसके पश्चात् साहित्य सलाहकार के रूप में रहे। सन् १६५० से १६६० का यह दशक उनके काव्य एवं हिन्दी साहित्य के उन्नयन का दशक रहा। 'रेडियो' के स्थान पर 'आकाशवाणी' का नामकरण महाकवि की प्रतिभा और सुझाव का ही प्रतिफल है। हिन्दी के सम्बन्ध में उनकी धारणा स्पष्ट है। वह हिन्दी का विकास शुद्ध-संस्कारित, संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के रूप में देखना चाहते थे, क्योंकि उनकी

मान्यता थी कि भारत की सभी भाषाएँ प्रायः संस्कृत के शब्दों से संपृक्त है। भाषा का विरोध हिन्दीतर क्षेत्रों में उर्दू एवं फारसी के अपरिचित शब्दों के कारण है। इस काल में उन्होंने अनेक उत्कृष्ट रचनाएँ की और उनके संगीत रूपको का प्रसारण भी इसी भावभूमि में हुआ। सन् १९६० में उनकी षष्ठिपूर्ति के अवसर पर उनके मित्रों ने दिल्ली में उन्हें अभिनन्दित करने का निश्चय किया। इस साहित्यिक समारोह के लिए भारतीय ज्ञानपीठ का सहयोग भी प्राप्त हुआ, जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने की। 'रूपाम्बरा' नामक एक विशिष्ट काव्य-संकलन भी ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित किया गया। विशेप सम्मान देने के लिए राष्ट्रकवि 'मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचना' रत्नावली, महीयसी महादेवी ने 'सप्तपर्णी' कविवर 'बच्चन' ने 'कवियों में सौम्यसन्त' नरेन्द्र शर्मा ने 'द्रोपदी' तथा अज्ञेय ने 'रूपाम्बरा' समर्पित की।

इस सम्मान से प्रेरित होकर भारत सरकार ने सन् १९६१, मे 'पद्म विभूषण' से अलंकृत किया। यहीं से उत्तरोत्तर सम्मानों एवं स्वीकृतियों का क्रम शुरू हुआ। इसी वर्ष पन्त जी ने रूस, इंग्लैण्ड एवं अन्य यूरोपीय देशों का भ्रमण किया किन्तु आर्थिक संकोच के कारण इच्छानुसार विदेश परिभ्रमण नहीं हो सका और इन्हें वापस आना पड़ा। इसके बाद इनकी काव्यकृति 'कला और बूढ़ा चाँद' पर पाँच हजार रुपये का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९६५ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इन्हें साहित्य वाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया और इसी वर्ष उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दस हजार रुपये का पुरस्कार प्रदान किया गया। लोकायतन तथा अन्य रचनाओं पर इसी वर्ष इन्हें रूसी सरकार द्वारा पन्द्रह हजार रुपये का नेहरू पुरस्कार प्राप्त हुआ और सन् १९६६ में इन्होंने रूस की यात्रा की। वर्ष १९६७ में विक्रम विश्वविद्यालय ने 'पन्तजी' को डी० लिट् की उपाधि से सम्मानित किया। इसी उत्कर्ष की कड़ी में इन्हे इनकी साहित्यिक काव्यकृति 'चिदम्बरा' पर सन् १९६८ में एक लाख रु० का भारतीय 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार मिला। स्वीकृति के इसी क्रम में सन् १९६० में पन्तजी साहित्य अकादमी के विशिष्ट सदस्य चुने गये।

'पन्तजी' के बाल्यकाल के सम्बन्ध में मैं अपने कवि मित्र, वरिष्ठ साहित्यकार 'श्री कैलाश कल्पित' द्वारा पन्तजी से लिए गये साक्षात्कार का एक अंश उद्धृत करना चाहता हूँ, जो इस क्रम में उपयुक्त लगता है—

प्रश्न—कृपया अपने बाल्यकाल पर कुछ प्रकाश डालें और पारिवारिक परिचय भी दें।

पन्तजी ने अपने उत्तर में कहा—

'संक्षेप में कहूँ तो बाल्यकाल सभी का एक सा होता है। बढ़ने पर ही व्यक्ति वैचित्र्य आता है। मैं बचपन से बड़ा संकोची रहा हूँ। कारण नहीं कह सकता। माताजी मेरे पैदा होने के छह घण्टे बाद मर गई थीं। पिताजी १९२८ मे पचहत्तर वर्ष की अवस्था में मरे। मेरे गाँव का नाम कौसानी है जो आकार मे छोटा है। गाँव में चाय के बगीचे थे, खेत न थे। पिता वहीं व्यापार करते थे। वे इस्टेट के मैनेजर थे। मुख्य व्यापार लकड़ी का होता था। अल्मोड़े के इस पहाडी भाग में प्रकृति की पूर्ण छटा प्राप्त है। मुझे तो यह स्विटजरलैण्ड लगता है। हम चार भाई और चार बहन थे। तीसरे (मझले) भाई की मृत्यु सन् १९२६ में टाइफाइड से हो गई। उनका नाम राघवदत्त पन्त था। अम्बादत्त पन्त डिप्लोमेसी के लेक्चरर हैं। बहनें सभी मर गई। एक भाई हरिदत्त पन्त हैं। पं० देवीदत्त पन्त एम० पी० थे उनका निधन अभी हाल में ही १९५५ अप्रैल में मोटर दुर्घटना से हो गया।

१९१८ के जुलाई मास में मैं प्रयाग आया। उन दिनों 'बापू' के असहयोग आन्दोलन की धूम थी। मैंने भी बापू के आदेश में पढ़ना छोड़ दिया। देवीदत्त जी पढते ही रहे। वह उस समय बी० ए० में थे। मैं म्योर सेन्ट्रल कालेज में पढता था और हिन्दू हास्टल में रहता था। अपने और अपने परिवार पर और अधिक प्रकाश डालने की शायद आवश्यकता नहीं है।''

पन्त जी का स्वभाव एवं हृदय एक बच्चे की तरह स्वच्छ और निर्मल था। अपने जीवन के प्रौढ़काल में भी वह हँसमुख-मिलनसार एवं संवेदनशील रहे। सन् १९४४-४५ का समय पन्त की मानसिक ऊहापोह की स्थिति का था। इस सम्बन्ध मे उनका कहना है कि—''सन् ४०-४५ तक मेरी मानसिक ऊहापोह एवं अन्त: सघर्ष की स्थिति रही। एक तो मेरा मन 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप अभिशप्त मानसिक स्थिति की व्रीडा को सहलाने का प्रयत्न करता था, दूसरी ओर अस्थिरता तथा उच्चाटन के कारण कहीं भी एक जगह पर स्थिर नहीं रह सकता था, सृजनकर्म के लिये तो जैसे इन वर्षों में प्रेरणा का स्रोत ही सूख गया था।''

कुछ दिन पन्तजी प्रयाग में अपने मित्र नरेन्द्र जी के साथ दिलकुशा में रहे। १९३४ में प्रतिमा मन्दिर के तत्वाधान में आयोजित एक गोष्ठी मे इन्होंने बच्चन जी की मधुशाला की कुछ कविताएँ सुनी और उनसे प्रभावित हुये। उस समय बच्चन जी विश्वविद्यालय में शोध छात्र थे। दिलकुशा में साथ रहकर 'पन्त' बच्चन, एवं नरेन्द्र, परस्पर सुहृद बन गये। यह तीनों कुमार अपने विनोदी स्वभाव मे कभी-कभी बच्चे बन जाते और खूब ही हुल्लड़ करते एवं तुकबन्दी करके एक दूसरे को चिढ़ाते थे इन दिनों बच्चन जी अपनी पत्नी 'श्यामा' की मृत्यु के कारण थे और निशा निमंत्रण का कर रहे थे पन्तजी का कोमल

ृदय किसी को दुखी देखने का आदी नही था, अत वह हमेशा विनोद पूर्वक बच्चन जी को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते थे, और लड़ैता भाई होने के कारण कभी-कभी उनको इतना डाँटते कि बच्चन जी हँसने लगते। पन्त जी ज्योतिष एव हस्तरेखा के ज्ञाता भी थे। इसी क्रम में एक दिन उन्होंने सन् १६४० में बच्चन जी का हाथ देखते हुये कहा कि 'सालभर के भीतर एवं सन् १६४१ में तुम्हारी शादी हो जायगी। बस देखते ही प्रेम में पड़ जाओगे—जिसे 'लव एट फर्स्ट साइट' कहते हैं। तुम्हारी शादी अभी हुई कहाँ है, वह तो अब होगी।' बच्चन जी के मुख पर विस्मय एवं आह्लाद बिखर गया तो पन्त जी ने पुन: कहा—'यदि मेरी बात ठीक नहीं निकली तो मैं हाथ देखना छोड़ दूँगा।' और सचमुच उसी साल प्रथम दृष्टि-विनिमय में उनका विवाह हो गया। बच्चन जी के प्रेम में ही पन्तजी ने अपने नये किराये के मकान नम्बर १० बेली रोड का नाम 'वसुधा' जिसका अर्थ था 'बच्चन सुमित्रानन्दन धाम रखा।' पन्तजी अकेले रहना पसन्द नही करते थे, अत: वह सदा सन्मित्रों के साथ रहते थे।

भारत छोड़ो आन्दोलन के निर्मम दमनचक्र से व्यथित होकर पन्त जी कालाकाकर से इलाहाबाद आकर, ६, बेली रोड में रुके सन् १६४२ के इस निर्मम अत्याचार एवं दमन से क्षुब्ध, 'ग्राम्या' के इस कवि ने 'लोकायतन' नामक सांस्कृतिक सस्था के स्थापना की योजना बनाई, और इसी क्रम में उनका आना-जाना बच्चन जी के निवास स्थान ७/ ए, बैंक रोड पर हुआ करता था। इस सम्बन्ध में कविवर बच्चन की नवपरिणीता बधू श्रीमती तेजी बच्चन का उद्‌गार यहाँ उद्धृत करना उचित समझता हूँ—

'वह सन्ध्या मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। अक्टूबर का महीना था हम दोनों अपने बगीचे में बैठे थे, बड़ी सुहावनी शाम थी वह। पन्त जी आये तो उन्हें देखती ही रह गई। कितने सुन्दर, कितने कोमल, कितने सरल-गम्भीर इस दुनिया में रहते हुए भी इस दुनिया के नहीं। मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और यकायक मेरे मुख से उनके लिए 'साँईदा' का सम्बोधन फूट पड़ा। ऐसे ही वह शाम को आते और हम लोग संग बैठते। दोनों कवि अपनी बातें करते रहते, कभी साहित्यिक कभी आध्यात्मिक, कभी सामाजिक, कविता-पाठ भी होता। मैं चुप सुनती रहती, पर उस सुनने में कितना आनन्द मिलता, कितनी शान्ति मिलती। जब वह चले जाते तो मैं सोचती कि यह व्यक्ति थोड़े ही समय में इतनी शान्ति दे सकता है, यदि वह घर में रहे तो घर का वातावरण कितना शान्त होता। एक दिन मैंने उनसे पूछा—साँईदा, आप हमारे यहाँ रहने के लिए कब आ रहे हैं ? वह बोले—मैं तो सोच रहा था कल आने की, पर, आपको किसी तरह का कष्ट तो नहीं होगा।'

कष्ट, उफ उन्हें हर बात का ध्यान आता है क्योंकि उन दिनों मैं माँ के जीवन में पहला कदम रखने जा रही थी। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मुझे कष्ट न होगा, और कहा कि हम दोनों आपकी प्रतीक्षा करेंगे, लेकिन प्रतीक्षा तो उन्हें करनी पड़ी, क्योंकि सुबह होते ही मैं अस्पताल पहुँच गई। शाम को वह मेरे पति के साथ आये—और उन्होंने मेरे पहले पुत्र को देखा, उसे आशीर्वाद दिया और वहीं उसका नामकरण भी किया। कहने लगे यह तो 'अमिताभ' हैं।....पन्त जी हमारे घर में रहने लगे। कभी ऐसा नहीं लगा कि बाहरी आदमी ठहरा है।....वह बहुत खुश रहते। अपने कमरे में लिखते-पढ़ते रहते, पता न चलता कि वह घर में हैं या नहीं।....उन्होंने 'लोकायतन' का सपना देखा....वह चाहते थे कि, कुछ ऐसा किया जाय, कि कविता की दुनियाँ में जीवन उतरे, जिसकी कल्पना हमें सुख देती है, वह व्यवहार में आये तो पृथ्वी स्वर्ग न बन जाय। कम-से-कम अपने जीवन को तो उन्होंने कविता का रूप दे दिया था, और उसका अनुभव हमें उनके साथ रहते हुए हर क्षण होता था। शक्तिवान् और विनम्र तो वह हैं ही। केवल कल्पना की दुनिया को नहीं, हमारी आपकी दुनिया को देखने और समझने बूझने का भी उनका व्यापक दृष्टिकोण है। जब कभी मैं अपनी समस्या उनके पास ले जाती, तो वह उसे ऐसे हल करते, ऐसे रख देते कि वह समस्या ही नहीं दीखती थी।....वह जब कभी घर से बाहर जाना चाहते थे, किसी से भी मिलने के लिए, तो मुझसे पूछ कर जाते थे, मिलने वाला चाहे सड़क के उस पार ही क्यों न रहता हो। इस बात पर मुझे बहुत आश्चर्य होता और मैं कहती—पन्त जी आप घर में सबसे बड़े हैं, पूछ कर तो मुझे जाना चाहिए। लेकिन उनके लिए यह साधारण बात थी, क्योंकि उन्हें हमेशा ध्यान रहता है कि उनके कारण किसी को, किसी तरह की असुविधा न हो, चिन्ता न हो, पन्त जी का ज्ञान अपार है। किसी भी विषय पर उनसे बात करें, वह उस विषय में सब कुछ जानते हैं। पर उनसे सबसे बड़ी तसल्ली मुझे उनके दवाओं के ज्ञान से मिलती थी।....उनके कमरे से जो तसल्ली में लेकर आती उसे डाक्टर भी नहीं दे सकते थे।'

जिन्होंने पन्त जी को निकट से देखा या जिन्हें उनके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह उनकी आत्मीयता को कभी नहीं भूल सकते, विषाद के क्षणों मे अविचल रहने वाले, सर्वहितेरताः के स्वभाव वाले परोपकारी एवं सन्त प्रकृति के पन्त जी वास्तव में महामानव थे। काव्य के शिखर-गौरवपुरुष पन्त को काव्याभिमान छू तक नहीं गया था। उनका हृदय-द्वार सर्वदा काव्य के आराधकों, नवयुवक सर्जकों एवं साधारणजन के लिए भी खुला था। प्रकृति, पल्लवों, पशुपक्षियो परिजनों एवं पुरजनों में समदृष्टि और समानधर्मा, पन्त, सभी के लिए प्रेरणास्पद

रहे। उठापटक एवं वादों के युग में भी वह निर्विवाद ही रहे। उनके आलोचक या समालोचक भले उन्हें अपनी-अपनी सीमित दृष्टि से देखें, किन्तु उनका साहित्याकाश एवं व्यापक दृष्टिकोण असीम है। पन्त जी ने भाषा को संस्कार, वाणी को पवित्रता, और अभिव्यक्ति को विविधा प्रदान कर, कविता भागीरथी प्रवाहित की, जो युगों तक कषायित प्रदूषण के बावजूद पवित्रतम रहकर अजस्र बहती रहेगी।

अन्तरंग-स्मृतिपट

किसी व्यक्ति या महामानव के अन्तरङ्ग को समझने के लिए स्वल्पकाल कुछ भी नहीं होता, क्योंकि उसकी आत्मा तो ईश्वर के सदृश ही अनन्त तरङ्गों का समवेत समूहगान है, जिसके क्रिया-कलाप, जिसका स्वर-आलाप, एवं संवेदनाएँ वायुमण्डल को उद्वेलित करती रहती हैं। महाकवि, महामानव, सुमित्रानन्दन पन्त का अन्तरङ्ग, ईश्वरीय चेतना के उच्चतम अवदानों से परिपूर्ण था, जो भी उनके निकट जिस भावना से गया, उसका परितोष उन्होंने उसी रूप में किया। उन्होंने सभी को अपनी स्नेह-सुधा से संपृक्त किया। उनकी दृष्टि में न कोई छोटा था न कोई बड़ा, पशु-पक्षियों से लेकर साधक, साहित्यकारों तक को उनका स्नेह-दुलार एवं मार्ग-दर्शन मिला।

मैं सन् १९५५-५६ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० ए० का छात्र था। साहित्यिक गतिविधियों, काव्य-कथा, रचनाओं में मेरी अभिरुचि बाल्य-काल से ही थी। इलाहाबाद आकर किसी बड़े साहित्यकार के सान्निध्य में जाने की, उससे परिचित होने की और उससे मार्ग दर्शन प्राप्त करने की उत्कट उत्कण्ठा मेरे मन में थी, किन्तु मेरे पास कोई ऐसी साहित्यिक पूँजी नहीं थी, जिसके बल पर मैं किसी बड़े साहित्यकार के पास जाने का साहस कर सकता, क्योंकि बहुधा यही सुनता था कि बड़े साहित्यकार सबसे नहीं मिलते, और न ही अधिक समय देते हैं।

किन्तु एक दिन मेरे मन ने, महाकवि सुमित्रानन्दन पंत से मिलने की ठान ली। ग्रीष्म ऋतु, सायं छह बजे का समय था, मैं पंत जी के निवास स्थान, १८ बी/७ स्टेनली रोड पहुँचा। बड़े संकोच से बाहर की कालबेल की स्विच दबाई। पंत जी ने स्वयं आकर द्वार खोला। लम्बा कद, गौरवर्ण, केश कुन्तल से झाँकती सौम्य मुखाकृति, जैसे करुणा और स्नेह की संगमस्थली। प्रणाम के लिए दोनों हाथ उठ गए, पंत जी ने बिना कोई परिचय पूछे कहा, आइए, आइए, अन्दर चलिए। ठीक उसी समय पंडित लक्ष्मीकान्त दीक्षित, तत्कालीन प्रवक्ता संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, भी पंत जी के रचनाकक्ष में विराजमान थे। वह चाय पीकर बाहर निकलने वाले थे मुझे देखकर बोले तुम भी कुछ लिखते हो क्या ? मैंने स्वीकृति में नम्रता से अपना सिर झुका लिया दीक्षित जी चले

गये। मुझे पंत जी ने अपने कक्ष में स्नेहपूर्वक बिठाया, और तुरन्त अपनी बहन शान्ति-जोशी से चाय बनाने को कहा। मैंने साहित्य सम्बन्धी अपनी जिज्ञासा प्रकट की और कहा कि मुझे आपका आर्शीवाद चाहिए। पंत जी ध्यान पूर्वक मेरी बाते सुनते रहे। इसी बीच चाय आ गई। चाय पीने के साथ ही मैंने पंत जी से कहा कि मैं 'कैवल्य खण्ड काव्य' लिखना चाहता हूँ, कैसे लिखूं कुछ मार्ग दर्शन दीजिए।' 'मैं क्या बताऊँ तुम कैसे लिखना चाहते हो, क्या लिखोगे ? लिखकर लाओ तो बताऊँ। पन्त जी बोले।' इस बीच चाय समाप्त हो गई थी। पंत जी ने मेरे चाय का प्याला उठा लिया और ले जाने लगे। मैंने आग्रह पूर्वक कहा, 'पंत जी, यह आप क्या कर रहे हैं। प्याला मैं रख देता हूँ।' 'नहीं यह तो मेरा काम है मुझे करने दो, पंत जी का उत्तर था।' एक अपरिचित को इतना स्नेह-सम्मान, मैं उनके व्यवहार से अभिभूत था।

मन में उनका स्नेहाशीष संजोये, उन्हें प्रमाण करके मैं बाहर चला आया। पंत जी मुझे छोड़ने द्वार तक आये। उनकी प्रेरणा मुझे झकझोरती रही। 'कैवल्य' की कुछ पंक्तियाँ मैंने लिखी थी। इस ग्रन्थ को पूर्ण करने की इच्छा बलवती हुई।

सन् १९६८ में मेरा 'कैवल्य' खण्ड-काव्य पूरा हो गया और उसकी पाण्डु-लिपि मैंने पंत जी को सम्मति के लिए दे दी। पंत जी ने पाण्डुलिपि रख ली और कहा कि इसे पढ़कर लिखूंगा। मैं चला आया। पन्द्रह दिन बाद मैं पुन उनके निवास स्थान पर गया। पंत जी से भेंट हुई, वे बोले अभी पढ़ा नहीं है, पढ़ने के बाद ही लिखूंगा। एक महीने बाद मैं पुनः उनके पास गया। पंत जी मिले और मुझे अन्दर कक्ष में ले गये, चाय पिलाई और एक पन्ने पर लिखी हुई अपनी सम्मति मुझे दी, जो इस प्रकार है—

'कैवल्य' काव्य में श्री राजाराम शुक्ल ने गागर में सागर भर दिया है—जीवन-सागर का मन्थन कर उससे ज्ञान की गागर भर दी है। यह काव्य छोटा होने पर भी अपने अर्थ-गाम्भीर्य में महाकाव्यत्व की कोटि का है। इसमें कोरा शाब्दिक ज्ञान न होकर हृदय की गहरी अनुभूति से निकले हुए कवि के भावोद्गार है। मैंने इसे ध्यान पूर्वक पढ़ा है। पाँच सर्गों में विभक्त यह काव्य, आपको विश्व, जीवन में कष्ट, प्रयास से उपलब्ध दृष्टि-ज्ञान देकर कैवल्य का आनन्द कलश, जिज्ञासु पाठक को अर्पित करता है।

ईश्वर का प्रसाद सा हम जब इस जग को समझेंगे
काम-क्रोध-मद लोभ, हमारे पथ में नहीं रहेंगे
अपने कर्त्तव्यों—नियमों धर्मों का ज्ञान रहेगा
प्रभु है परम कृपालु सदा सबका कल्याण करेगा।

निःसन्देह भगवत् कृपा के बिना कुछ भी श्रेय नहीं है। मैं शुक्ल जी को ऐसे गम्भीर क्षेत्र में सफलता पूर्वता परायेण कर सकने के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।'

'पंत जी' की सम्मति पाकर मैंने उसे पढ़ा। मन कृतज्ञता से भर गया। किसी नये अपरिचित साधक-साहित्यांकुर को इतना आशीष शायद कोई अवढर-दानी ही दे सकता है। प्रणाम करके मैं वापस आया और मन ही मन पंत जी को अपना काव्य-गुरु मान लिया, उनके प्रति श्रद्धा और अनुराग बढ़ा। १६६६ मे 'कैवल्य' का प्रथम संस्करण, निकला। एक दिन मेरे मित्र कैलाश-कल्पित ने 'सारिका में' हिन्दी साहित्य की समीक्षा, शीर्षक लेख दिखाया, जिसमें 'निराला' सदृश बड़े रचनाकारों की रचनाओं के साथ 'कैवल्य' की भी समीक्षा थी। कलाकार कवि एवं रचनाकार को यदि किसी समर्थ गुरु का अशीष मिल जाय तो उसकी साधना अवश्य फलवती होती है। मैं मानता हूँ कि उसके बाद मेरी साहित्यिक साधना और गतिविधि तीव्रतर हुई और अब तक 'गंगायतन, मारिषा' सदृश काव्यग्रन्थ एवं 'अतृप्त' उपन्यास, 'विद्यार्थी अनुशासन' आदि प्रकाशित रचनाएँ उन्हीं के आशीष के प्रतिफल हैं।

पंत जी के आलोचकों का यह भी कहना है कि वह तो सभी के लिए कुछ न कुछ लिख देते थे, उनकी रचनाओं को पढ़े और बिना पढ़े भी। किन्तु यह सर्वथा सत्य नहीं है। 'पंत जी' रचनाओं को पढ़ते थे, सुझाव भी देते थे, और कभी-कभी जब आग्रहकर्ता उन्हें नहीं छोड़ता और उनके आशीष से अपने कल्याण की दुहाई देने लगता था तो वह उसका आग्रह ठुकरा नहीं पाते थे और सरसरी तौर पर पढ़कर कुछ लिख देते थे। वह कहते थे कि मेरे द्वारा यदि किसी का उत्साह-वर्द्धन या कल्याण हो जाय तो क्या हर्ज। कभी कभी महादेवी जी भी उन्हें मना करती थी कि वह सभी के लिए लिख देते हैं। उन्हें इस आदत को बदलना चाहिए। किन्तु पंत जी का स्वभाव, उनकी आत्मा, गंगा की तरह सरल-तरल थी, उनके मन में किसी के लिए रोक-टोक नहीं थी। वह सबको आर्शीवाद स्वरूप जीवन भर कुछ न कुछ देते ही रहे।

अपने को छोटा सा छोटा मानकर, दूसरे के लिए हृदय की अगाध ममता-करुणा बिखेरना, किसी महामानव का ही कार्य है। जो अपनी अहंता में ही विमूढ़ रहता है वह दूसरे को क्या दे सकता है। पंत जी के इसी स्वभाव की एक स्मृति प्रस्तुत है जो सुश्री शाँति जोशी ने अपनी पुस्तक 'सुमित्रानन्दन पंत साहित्य और जीवन' के पृष्ठ ६६४' पर दिया है—

'४ नवम्बर ६८ की बात है पंत ने मेरे कमरे में आते ही कहा बड़ी आफत है भेंट-वार्ता लेने पुष्पा आ रही है जगदीश गुप्त का फोन आया

है। मैंने मजाक किया—'आफत क्या, बड़े आदमी के ठाट हैं।' 'बड़ा आदमी क्या माने ?' उन्होंने झुँझलाकर कहा। मैंने अपने पुराने स्वर में ही कहा, प्रतिष्ठित लेखक हो या नहीं ?'' वे उदास हो गये। हमेशा बेवकूफी की बात करती हो। मैं तो अपने को सबसे बड़ा दोषी मानता हूँ। क्या जीवन है मेरा कुत्सित, विश्व मे इतनी विषमताएँ है। उन्हें दूर करने के लिए कुछ नहीं कर पाया, थोड़ा सा भी नहीं। मैं तो अपने को होटल का बेरा समझता हूँ, चोर। हम सभी तो चोरी करते हैं। समाज की विषमताओं के भागीदार हैं। क्या कर पाया हूँ विषमताओ को दूर करने के लिए, कुछ नहीं''

सहित्यिक अहमन्यता के इस युग में इतना आत्म-निवेदन महाकवि पंत के सिवा और कहाँ मिल सकता है ?

पंत के प्रमाण पत्रों, भूमिकाओं का अशीर्वादात्मक मूल्य है। अपने बच्चो के प्रति उनके हृदय से आर्शीवाद निकलता है। वह चाहते है, सभी सुखी रहे सभी सफल रहें। किसी भी विपन्न एवं आर्त के लिए वह आशुतोष हैं।

एक दिन पंत जी से मिलने उनके वेली रोड निवास स्थान पर गया था। मैं मिलकर उनके घर से बाहर निकला तो देखा एक वृद्ध दीनहीन अन्धे व्यक्ति सामने लान में बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके साथ एक लड़का भी था। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि, मैं पंत जी से मिलना चाहता हूँ। मैंने अन्दर जाकर पत जी को सूचना दी। पंत जी बाहर आये और उससे पूछा, 'भाई कैसे आये हो।'

'मैने कुछ कविताएँ लिखी हैं, अगर आप उस पर कुछ लिख देते तो छप जाती' उसने निवेदन किया।

'मेरे पास छोड़ जाओ पढ़कर लिख दूंगा, फिर आकर ले जाना' 'मैं बनारस से आया हूँ, वृद्ध हूँ, दिखाई नहीं पड़ता, गरीब हूँ फिर कैसे आ पाऊँगा।' वह आग्रहपूर्वक बोला। पंत का करुणापूर्ण हृदय पसीज गया। वह उसे उठाकर अपने हाथों का सहारा देकर अन्दर अपने कक्ष में ले गये। पंत जी ने उसकी लिखी हुई पाण्डुलिपि ले ली और पढ़ने लगे। मैं भी वहीं सोफे पर बैठ गया। वह नीचे गलीचे पर बैठ गया। शीघ्र ही पंत जी की निगाह उस पर पड़ी, वह उठे। उसे उठाकर आग्रहपूर्वक सोफे पर बिठाया। चाय पिलाई और थोड़ी ही देर में लिखकर उसकी कविताओं पर अपनी सम्मति दे दी।'

मुझे स्मरण हो आया 'निराला' का वह रूप, जब उन्होंने दारागंज में राय-रामचरण की कोठी के सामने सड़क पर आती हुई एक कृशकाय, कूबरी, दीनहीन वृद्धा के पाँव झुककर छुये थे और उसका हालचाल पूछा था।

महामानवों के लिए वेषभूषा, निर्धनता, सम्पन्नता एवं जाति-पाँति का कोई अर्थ नहीं होता। उनके हृदय में सभी के लिए अगाध करुणा और प्रेम है। बस उस करुणा को प्राप्त करने वाला पात्र चाहिए।

निन्दकों के प्रति भी पंत के मन में स्नेह था। एक बार एक सज्जन पंत जी से भेंट वार्ता के लिए आये। पंत जी ने उसे भेंट-वार्ता के साथ पचास रुपया की किताबें भी दे दी। पंत जी की ममेरी बहन शांति जोशी ने उन्हें टोंकते हुए कहा, 'उन्होंने तुम्हारे साथ अभी हाल में घोर अशिष्टतापूर्ण व्यवहार किया है। वैसे भी सदैव तुम्हारे बिरुद्ध कुछ न कुछ कहते रहते है। और तुम उन्हें पचास रुपये की भेंट-वार्ता दे रहे हो।' पंत जी नाराज हो गये और बोले—'अशिष्टता क्या होती है? ऐसे व्यवहार से मेरी कोई हानि नही होती, उन्हें ही परेशान होना पडता है। अजीब है तुम्हारा स्वभाव, दुनिया भर से द्वेष रखना। मुझे यह सब पसद नहीं है। बेचारे को दिक्कत हो रही होगी, तभी तो आया, नहीं तो आता कहाँ है? भेंट वार्ता दे दूँगा तो उसे थोड़े से पैसे मिल जायेंगे। यह कोई बुरी बात है।'

पंतजी का जीवन व्यक्तिगत निन्दा और स्तुति से परे हैं। वह केवल उस अपमान को अपमान मानते हैं, जिससे राष्ट्रीय, सामाजिक क्षति हो। वैसे अपने अपकारी के प्रति भी उनकी स्नेह-स्रोतस्विनी प्रवाहित होती रहती थी।

पन्तजी के साथ अमृतलाल नागर जी के संस्मरण की एक चर्चा कर रहा हूँ। बात सन् १९४४ की है जब पंत जी बम्बई में नागर जी से मिले—"पंतजी बम्बई में मिले। तब मैं एक सफल व्यक्ति था। बम्बई ने मुझे हर किसी के प्रति न झुकने लायक एक अकड़ भी दे रखी थी, लेकिन पंतजी के सामने मन पानी-पानी हो गया। यहाँ मैं निराला जी का एक उपकार मानता हूँ, साक्षात् न देखते हुये पंत के प्रति निराला से यदा-कदा सुनी हुई प्रशंसा। मैंने पंत के लिये अवसर उनके तीखे बोल भी सुने थे, पर उनका असर मेरे मन पर निराला जी की आवेश भरी बडबड़ाहट से अधिक नहीं। मान लिया था कि उनकी आदत है। खैर, प्रत्यक्ष मिलने पर पहली बात यह जान पड़ी कि 'बड़े आदमियों में पंतजी जैसा सरल मन वाला अब तक मैंने और कोई नही देखा। पंत का व्यक्तित्व मुझ पर जादू सा असर करने लगा। मै ही नहीं, मेरा घर भर, पंत के प्रति श्रद्धावान् है। मेरी माँ तक कहती थी कि ऐसा देवता आदमी कम देखने को मिलता है।''''''घर मे ऐसा कौन है जो पंतजी का नहीं है। मेरी और मेरी दुश्मन प्रतिभा की बात तो आप जाने ही दें।''''''पंत को उदास और दूसरो की सहायता करने वाला, शिशुवत आचरण और प्रौढ़ विचारों के गम्भीर मनोहर झरने सा झरता, मैंने इतना देखा है, और उससे इतना प्रभावित हूँ कि उस प्रभाव को भूल नहीं सकता।"

इसी क्रम में नागर जी आगे कहते हैं कि—"पंतजी की वाणी में बात क. रम मूर्त हो उठता था। मैं कोरी काव्य-शैली में लफ्फाजी नहीं कर रहा, वरन् यह सच है कि पन्तजी तब बच्चों के से सरल, माता के समान अमित करुणामय, हठयोगी साधक से कठोर और प्रकृति के समान विविध चित्र भरे होते हैं। तब किसी बात पर जब उनकी ना निकलती है तो वह हिमाचल सी अडिग होती है। उनका स्वर अपनी सारी मिठास लेकर बज्रादपि कठोर हो जाता है।' (स्मृति चित्र पृष्ठ ६४-६५)।

पंत की सौम्यता अनायस ही मन को आकर्षित कर लेती थी। इसी सम्बन्ध मे दिनकर जी ने लिखा है—

'यह भी भाग्य का व्यंग्य है कि जिस कवि पर आसक्त मैं १६२५ ई० के करीब हुआ था, उससे मेरी पहली मुलाकात १६४८ ई० में हुई, जब मैं इलाहाबाद भी शायद पहली बार गया था। प्रणाम करके बैठते ही मेरी दृष्टि उनकी आकृति मे खो गई—और कई मिनट तक हममें से कोई कुछ बोल नहीं सका। अन्त मे मौन भंग करते हुये पन्तजी ही बोले, 'अब क्या देखते हैं?' मुझे सहसा कोई जवाब नही सूझा, फिर भी मुँह से निकल गया, 'अभी भी बहुत कुछ दर्शनीय है। पंतजी को देखते ही सहसा यह भान होता हैं, मानों आप परियों के देश से उतरे हुये किसी देवर्षि के सामने खड़े हों। छोटा हल्का शरीर, चेहरे पर सौम्य शान्ति, जो सचमुच ही देवताओं की शान्ति है, और सिर पर घने लहराते बाल जो सुन्दर से सुन्दर रमणी को और भी सुन्दर बना सकते हैं। केवल बाल ही नहीं, पंतजी का कोट, पन्तजी की पतलून, यहाँ तक कि उनका कुरता भी ऐसे कट का होता है, जिससे नारी जाति के प्रति उनके असीम आदर की सूचना मिलती है...... ।' (स्मृति चित्र १२६-२७)।

एक मार्च १६५० को पन्तजी ने आकाशवाणी के परामर्शदाता का पद स्वीकार किया। किन्तु उनके इस स्वीकृति के साथ ही उनके विपक्षियों की एक मुहिम बन गई। कुछ लोग कहने लगे कि पन्तजी ने अपना लेखकीय स्वातन्त्र्य खो दिया। इसके लिए उन साहित्यकारों की कुण्ठा भी उत्तरदायी थी, जिन्हें आकाशवाणी मे कोई कार्य नहीं मिला, यद्यपि पंतजी ने अपने प्रयास से कई रचनाकारों को आकाश-वाणी से संयोजित किया। सन् ५० से ५७ तक आकाशवाणी दिल्ली से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित रहे। इस बीच दो साल तक चीफ प्रोड्यूसर थे। इसी समय सूचना प्रसारण विभाग के मन्त्री श्री आर० आर० दिवाकर तथा डा० केशकर थे, अधिकारियों में श्री बालकृष्ण राव और जगदीशचन्द्र माथुर थे, जो पंतजी का सम्मान करते थे और उनका सुझाव मानते थे। सन् ५७ के बाद उन्होंने किसी तरह इन अधिकारियों को समझा बुझाकर चीफ प्रोड्सर के पद से अवकाश ले

लिया और आनरेरी ऐडवाइजर का पद स्वीकार कर लिया, उसे भी इस शर्त के साथ कि वह आकाशवाणी के किसी कार्यक्रम के लिये उत्तरदायी न होंगे। केवल सुझाव माँगने पर ही सुझाव देंगे, और साल में दो बार दिल्ली जाकर मीटिंग मे भाग लेंगे। इस बीच उन्हें मानदेय के रूप में ५००/- प्रतिमास मिलता था। सन् १९६७ में उन्होंने आनरेरी ऐडवाइजरशिप से भी अवकाश ले लिया। पंतजी का विचार था कि, 'सिनेमा और रेडियो आज के सबसे अधिक शक्ति-सम्पन्न साधन है। वे विश्वमन के प्रतीक हैं। जन-शिक्षा की असंख्य संभावनाएँ वे अपने में छिपाये है।......नई मान्यताओं का प्रचार उनके माध्यम से किया जा सकता है।...... हिन्दी को मैं कोरी भाषा ही नहीं मानता, एक संस्कृति मानता हूँ। रेडियो द्वारा हिन्दी की शक्ति से सांस्कृतिक निर्माण का कार्य सम्भव हो सकेगा।" (पंत-मानव भेंट वार्ता)।

लोकायतन के उद्देश्यों का प्रसार एवं हिन्दी का प्रचार भी एक कारण था जिससे पन्तजी साहित्यकारों के विरोध के बावजूद भी काफी दिन तक आकाशवाणी से जुड़े रहे। आकाशवाणी से सम्बद्ध रहकर उन्हें भगवती चरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, नरेन्द्र शर्मा, अमृतलाल नागर, उदयशंकर भट्ट, बच्चन, रामचन्द्र टंडन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लक्ष्मीनारायण लाल, विश्वम्भर मानव, केशवचन्द्र वर्मा, रमानाथ अवस्थी, शान्ति मेहरोत्रा, विमला रैना, कमलेश्वर, नर्मदेश्वर उपाध्याय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नन्द दुलारे बाजपेयी, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, नरेन्द्रजी, महादेवी वर्मा सदृश साहित्यकारों एवं कर्मचारियों का सहयोग भी मिला।

उस समय जिस किसी साहित्यिक ने आकाशवाणी में नौकरी के लिये पन्तजी से कहा, उन्होंने उसके लिये प्राणपण से प्रयास किया। पर इसका परिणाम विचित्र रहा, आकाशवाणी में नौकरी न मिलने या मिलने के पूर्व पंत के ऊपर राज्याश्रय लेने का आरोप लगाया गया, मानो पंत ने स्वदेश की नहीं विदेश के सरकार के पैर पूजे हों। परिमल के सदस्यों ने डा० हरदेव बाहरी के संयोजकत्व मे सन् १९५७ (३ मई से ५ मई) 'लेखक और राज्याश्रय' नाम से एक वृहत् गोष्ठी की, जिसमें अज्ञेय जी विशेष वक्ता थे, यद्यपि उन्होंने स्वयं ही आकाशवाणी की नौकरी की थी।

कुछ साहित्यकारों के विरोध के बावजूद आकाशवाणी का काम उनके सृजन मे बाधक नहीं रहा। पंतजी कहते थे, 'जब मैं किसी काम को करता हूँ तो मन को तटस्थ रखता हूँ। फिर सृजन में वह बाधक नहीं रहता। सन् १९५० से ५७ की अवधि में पंत ने नयी काव्य-विधा में काव्य रूपकों का प्रणयन किया। जो रजतशिखर

शिल्पी तथा 'सौवर्ण' नामक पुस्तकों में संगृहीत हैं। 'अतिमा' 'वाणी' काव्य संग्रह 'गद्यपथ' एवं 'शिल्प और दर्शन' भी इसी काल की रचनाएँ हैं।

पंतजी के सम्बन्ध में नगेन्द्र जी का कहना है कि, 'उनमें अबोध पावनता है, वे बच्चा हैं। दो साल के बच्चे से लेकर सुज्ञ कुटिल जन भी सम्भवतः उन्हे अपने जाल में फँसा सकता है, अपनी बात मनवा सकता है। ऐसे मे वे सब कुछ जानते देखते समझते हुए भी भोले रहते हैं,'—'ऐसी छोटी बातें मुझे नहीं छूती है' किन्तु जहाँ राष्ट्र, समाज, संस्कृति की रक्षा तथा मर्यादा का प्रश्न है, उनकी मान्यताएँ वज्र कठोर हैं। व्यावहारिक बुद्धि सजग और पैनी है तथा दृष्टि व्यापक और न्याय संगत। आकाशवाणी दिल्ली की मीटिंग के सम्बन्ध में उनका कहना था, 'मैं तो वही कह सकता हूँ जो मुझे उचित लगता है। मुझे किसी को खुश नही करना है। नौकरी का मुझे कोई प्रलोभन नहीं है, मैं तो इसलिये करता हूँ कि मेरे मनोनुकूल काम है। इसके द्वारा कुछ अच्छा कर सका तो सन्तोष होगा। नही तो अपने राम, कह देंगे कि आप अपनी पालसी लेकर रहिये।'

कभी-कभी पंतजी के पास साहित्यकारों और संबंधियों के विरोधात्मक और घृणित कुण्ठाग्रस्त पत्र भी आते थे जिसे पढ़कर भी उनका मन विचलित नही होता था और अपनी उसी शिशुवत् मुस्कान में कहते 'मैं तो लिखने या कहने वाले का यही अहसान मानता हूँ कि उसने यह नहीं कहा कि पंतजी ने किसी की हत्या की है—लोगों की बातों का बुरा नही मानना चाहिये। कहने वाले तो कहते ही हैं। जब गाँधी के व्यक्तित्व के बारे में छोटी बातें कह सकते हैं तो मैं हूँ ही क्या ? ऐसी बातों को मन में नहीं रखना चाहिए। मैं तो अपना निर्माण या विकास करना चाहता हूँ। ऐसी बातों में पड़कर आदमी केवल कीचड़ में धँसता है यह तो व्यक्ति पर है कि वह अपना जीवन अच्छी तरह बिता सके।' दूसरे के प्रतिशोध की भावना तो उनके मन में भूलकर भी नहीं उठती थी। वह कहते थे "छिः यह छोटी बातें हैं। क्या मिलेगा मुझे ? कीचड में पत्थर डालो अपने ऊपर ही पड़ेगा। कोई मेरा कर ही क्या सकता है ? असल कर्ता तो वही (भगवान) है। जो वह चाहेगा वही होगा। मैं तो इन लोगों की बातों का आनन्द लेता हूँ।"

पंतजी कभी किसी से नाराज नहीं होते थे—और जब कभी होते थे तो वह भी बड़ा दिलचस्प होता था। इस सम्बन्ध में कुँवर सुरेश सिंह द्वारा सम्पादित पुस्तक 'पंतजी और कालाकाँकर के एक रोचक संदर्भ की चर्चा कर रहा हूँ। एक दिन पंतजी की अतिशय सौम्यता और सहशीलता को देखकर कुँवर साहब ने उनसे पूछा—पंतजी मैंने आपको किसी पर गुस्सा होते हुये नही देखा, कृपया कोई घटना सुनाइये जब आपको किसी पर गुस्सा आया हो। पंतजी ने कुछ सोचकर कहना शुरू किया—'एक बार मैं मुरादाबाद से लखनऊ जा रहा था। जब स्टेशन

पर पहुँचा, ट्रेन छूटने वाली थी। मैंने गार्ड से कहा कि मैं लखनऊ जा रहा हूँ। टिकट लेने का समय नहीं है। इन्टर क्लास में बैठा हूँ। कृपया टिकट चेकर से कह दें, मेरा टिकट किसी अगले स्टेशन पर आकर बना दे। मैं गार्ड से कहकर चलने वाला था कि एक देवी जी घबराई हुई वहाँ आईं और टिकट न लेने की मजबूरी बताकर अपने टिकट बनाने के लिए गार्ड से कहने लगी।'

'मैं जैसे डिब्बे में दाखिल हुआ, वे भी उसी डिब्बे में आकर मेरे पास बैठ गईं। उन्होंने बताया कि वह भी लखनऊ जा रही हैं। ट्रेन छूटने पर हम दोनों आपस मे बातें करने लगे। दो-तीन स्टेशन निकल जाने के बाद टिकट चेकर ने मेरे डिब्बे मे आकर पूछा—'किसका-किसका टिकट बनाना है। मैंने उसे अपने पास बुलाकर अपना और उन देवी जी का टिकट लखनऊ तक के लिये बनाने को कहा। टिकट चेकर ने मेरा टिकट बनाकर मुझे रकम बताई तो मैंने अपने पर्स से पैसे निकालकर उसे दे दिया और टिकट ले लिया। जब उसने देवी जी को टिकट देकर उतनी ही रकम देने को कहा तो उन्होंने मेरी तरफ इशारा करके कहा मैं तो आपके ही साथ हूँ। मेरे टिकट का दाम भी आप ही देंगे। मुझे उनका यह वाक्य कि 'मैं आपके ही साथ हूँ, बहुत खटका, और मैंने उनसे पूछा मैं पैसे क्यों दूँ?' इस पर उन्होने कहा, मजाक छोड़िये और उन्हें पैसे दे दीजिये। ये आखिर कब तक खड़े रहेंगे।'

अब मुझे गुस्सा आ गया और मैंने दृढ़ स्वर में कहा, मैं पैसे नहीं दूँगा। इस पर उन्होंने कहा, 'हर वक्त का मजाक अच्छा नहीं लगता। यह मजाक करने का भला कौन सा मौका है। इन्हें ज्यादा परेशान न करें।'

इस बार मैंने टिकट चेकर से कहा, 'यह मेरे साथ नहीं हैं। मेरा तो इनसे ट्रेन पर ही परिचय हुआ है। आप इन्हीं से टिकट की रकम वसूल करें।'

टिकट चेकर भी ऊब चुका था। उसने देवी जी के हाथ से टिकट लेकर कहा, अगर आप टिकट के पैसे नहीं देती तो मजबूरन मुझे टिकट कैंसिल करना पडेगा।

इस पर देवी जी ने उससे बड़े नाटकीय ढंग से कहा, 'आप भी इनकी बातो मे आ गये।' और फिर उन्होंने अपना पर्स खोलकर दिखाते हुए कहा, 'देखिये इसमें एक भी पैसा नही है। ये पैसे अपने पास ही रखते हैं और मुझे मौके बे मौके परेशान करते हैं।'

'मुझे उसकी बातों पर गुस्सा तो बेहद आया, लेकिन देखा कि उसका पर्स एकदम खाली था, लेकिन उसे कह देना चाहिये था कि मेरे पास टिकट के पैसे नही हैं। यह नाटक करने की क्या जरूरत थी।

मैंने अपने पर्स से टिकट चेकर को पैसे दे दिए। लेकिन मारे गुस्से के लखनऊ तक नही बोला।'

कुँवर सुरेश सिंह ने 'कहा, मैं तो ऐसी फरेबी औरत को एक छदाम भी न देता।'

'मि० सुरेश सिंह आदमी की मजबूरियाँ जाने उससे क्या-क्या करा देती है।' पंतजी का उत्तर था।

रहिमन आप ठगाइए और न ठगिए कोइ।
आप ठगे सुख होत है, आन ठगे दुख होइ॥

ऐसे व्यवहारों को सहना और मुस्कराते रहना, पंत सदृश सन्तों का ही स्वभाव है। पंत और निराला के कटु सन्दर्भों की भी चर्चा प्रायः होती है किन्तु अन्तरतम में जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में एक दूसरे के प्रति अगाध स्नेह और श्रद्धा थी।

अपने संस्मरणों में कुँवर सुरेश सिंह ने लिखा है कि, 'एक बार पंतजी ने मुझे निराला जी से उनकी एक बड़ी सी फोटो माँग लाने को सहेजा, जिसे देने के लिए निराला जी ने वादा किया था। मैंने लखनऊ जाकर निराला जी से पंत का सन्देश कहा, तो उन्हें बहुत तलाशने पर भी कोई बड़ी फोटो नहीं मिली। उन्होंने अपनी एक छोटी फोटो मुझे दी, जिसमें कहीं दब जाने के कारण एक शिकन पड गई थी मैंने जब निराला जी का ध्यान उस शिकन की ओर खींचा तो उन्होंने फोटो मेरे हाथ से लेकर, उसके पीछे लिख दिया।'

''१२, मकबूलगंज लखनऊ

'फिर दूसरी अच्छी प्रति इसके और इसके बड़े आकार की आपको दूँगा। अभी इसे ही स्वीकार कीजिये। इसमे वैसी ही शिकन पड़ी है, जैसी कभी-कभी मुझमें और आप में पड़ती है।'

सप्रेम

२५-५-३८

निराला ने इस शिकन को भी अपनी मुक्त हँसी से मिटा दिया और फोटो कुँवर साहब को दे दी।

इसी क्रम में कुँवर साहब ने लिखा है कि, 'एक बार निराला पाँच छह दिन के लिए कालाकाँकर पधारे, और पंतजी के साथ नक्षत्र में ठहरे। वह कभी पंतजी के साथ सवेरे का नाश्ता करते और कभी टहलते हुये यहाँ आ जाते। एक दिन वह हमारे यहाँ सवेरे ही आ गये। मुझे देखते ही हँसकर ताली बजाकर बोले, 'कल बडा मजा आया कुँवर साहब' और इतना कहकर वे दोनों आँखें मूँदकर कुछ सोचने लगे। उनका चेहरा गम्भीर हो गया। दो-चार मिनट के बाद उन्होंने आँखें खोली और मुझसे कहा 'देखिये कुँवर साहब न तो मै चाटुकार हूँ और न याचक ही हूँ। मैं तो एकदम मुँहफट और खड़ेजग आदमी हू जो मन मे आता है उसे कहने

में कभी नहीं चूकता। आज आपसे एक बात कहने आया हूँ, लेकिन इसे किसी से कहिएगा नहीं। पंतजी से और प्रकाशवती जी से भी नहीं।

'मैं यहाँ इसलिये आता हूँ कि आप मेरा आदर और सम्मान करते हैं और मेरे हृदय में भी आपके प्रति बहुत स्नेह है। यहाँ आकर पंतजी से भी भेंट हो जाती है और दो-चार दिन हँसी, खुशी में बीत जाते हैं। आपके प्रति मेरा स्नेह इसलिए और बढ़ गया है कि आपने पंतजी को यहाँ बुलाकर और सब प्रकार सुविधाएँ देकर बड़ा सराहनीय कार्य किया है। पंतजी को शान्त वातावरण और एकान्तवास की आवश्यकता थी। वह उन्हें यहाँ उपलब्ध हो गया है।

पंतजी एकदम बच्चों जैसे हैं—'सरल-कोमल हृदय वाले कवि। इसीलिये मै उन्हें राजकुमार कवि कहता हूँ। एक दिन भी संघर्ष नहीं कर सकते हैं। संघर्षों से जूझने के लिये तो यह 'निराला' बना है। सबसे टक्कर लेने वाला और सबसे दो टूक बातें करने वाला। प्रयाग में भला यह अपनी गृहस्थी सँभाल कर और आफिस में क्लर्की करके कभी कुछ लिख सकते हैं। कभी नहीं, इसलिये कहता हूँ कि आपने इनको सभी सुविधाएँ देकर हिन्दी भाषा की बहुत सेवा की है।'

इस पर कुँवर सुरेश ने निराला जी से पूछा, आचार्य जब आपके हृदय मे पंत जी के लिए इतना स्नेह है, तो कभी-कभी तीखी बातें कहकर उन्हें दुखी क्यो कर देते हैं।'

निरालाजी ने कहा, 'मैं इसलिए करता हूँ कि वह आरामतलब होकर अपनी प्रतिभा को कुण्ठित न कर दें। इसीलिए बीच-बीच में उन्हें खोद देना बहुत जरूरी है, और इसे निराला ही कर सकता है। कल ही की तो बात है, मैने पंत जी से कहा, तुम यहाँ मखमली गद्दे पर सोकर क्या कभी जनमानस के हृदय तक पहुँच सकते हो? अनन्त में चाहे जितना उड़ो, लेकिन धरती पर के ग्रामवासियों, और उनके जीवन में तुम्हारी कभी पहुँच नहीं हो सकती। यह काम तो निराला ही कर सकता है जो गाँव में पैदा हुआ है, वहीं बढ़ा, और वही एक-मात्र प्रतिनिधि कवि है। पंत जी बेचारे चुप रहे, बड़ा मजा आया।'

पंत और निराला एक दूसरे को हृदय से चाहते थे और अपने विनोद मे भी एक दूसरे को साहित्य-साधना के लिए प्रेरित करते थे। भले कुछ आलोचकों और समीक्षको की दृष्टि में वे परस्पर एक दूसरे को अपनी साहित्यिक प्रगति मे बाधक मानते थे। पंत जी निराला जी को सुखी देखना चाहते थे और निराला पत जी को, एक दूसरे का परोपकार करके भी वे प्रदर्शन नही करना चाहते थे। दोनों महात्मा और सन्त प्रकृति के थे। 'नेकी कर कुएँ में डाल' की उक्ति वे चरितार्थ करते थे। उनका उपकार प्रत्युपकार के लिए नहीं, उनका स्वभाव ही परोपकारी था। वह सर्वात्मा ईश्वर की भाँति कल्याणकर होने के साथ

अदृश्य ही रहना चाहते थे। कहीं एक दूसरा जानकर उनके अहसान से दब न जाय, या बुरा न मान जाय, या फिर मुझे क्या श्रेय, श्रेय तो परमेश्वर का है जिसने मेरे अन्दर ऐसी भावना दी है।

ऐसी ही एक रोचक घटना का वर्णन कुँवर सुरेश सिंह ने अपनी पुस्तक 'पंत जी और कालाकाँकर' के पृष्ठ ३४-३५ पर किया है। उसके अनुसार, 'एक दिन मैं (कुँवर सुरेश सिंह) और पंत जी सन् ३२-३३ ई० में लखनऊ गये थे। मैं लौट आया, पंत जी वहीं अपने भाई के पास एक हफ्ते के लिए रुक गए। वहाँ से लौटने के दूसरे ही दिन पंत जी का तार मिला कि तुरन्त लखनऊ आ जाओ, बहुत ही आवश्यक कार्य है। गाड़ी लखनऊ रात साढ़े दस बजे पहुँचती थी। मैंने सोचा जाड़े के दिन हैं, कल सबेरे पंत जी से मिलूँगा। लेकिन देखा कि पंत जी प्लेट-फार्म पर मौजूद हैं। जब बुलाने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा। 'आपको इसलिए कष्ट दिया कि निराला जी एक तस्वीर फ्रेम कराने को अमीनाबाद में एक दूकान पर दे आये थे। उसने उन्हें तीसरे दिन बुलाया था। तस्वीर देते समय वह सिर्फ लुंगी पहने थे, लेकिन जब वह तस्वीर लेने, रात को गये तो एक ऊनी चादर ओढ़े थे और कनटोप लगाये थे। इसी कारण शायद दूकानदार ने उन्हे नहीं पहचाना, और उसने कहा कि वह कोई तस्वीर नहीं दे गये। इस पर निराला जी को बहुत क्रोध आया और उन्होंने उसकी टांग पकड़ कर दूकान के नीचे खींच लिया। उसके शोर मचाने पर आस-पास के दूकानदारो ने उन्हें घेर लिया और मारपीट होने लगी। निरालाजी अकेले क्या करते, उन्हें भी चोट आई। दूकानदार ने पुलिस में रिपोर्ट कर दी है और उसे गवाहों की कमी नही है। इधर निराला जी भी अड़े हैं कि मैं सही बात अदालत में कहूँगा, नतीजा जो भी हो। अब उन पर केस चलेगा, जिसमें जुर्माना या सजा भी हो सकती है। यदि उन्हें कहीं जेल जाना पड़ा तो उन्हें तो दुख होगा ही, सारे हिन्दी जगत की बड़ी बदनामी होगी। आपको इसलिए बुलाया है कि आप अपने बड़े भाई राजा अवधेश सिंह से कह कर किसी प्रकार इस मामले को तय करा दीजिये जिससे निराला जी न तो गिरफ्तार किये जायँ और न उन्हें जेल जाना पड़े।'

सुरेश सिंह ने कहा, 'इसमें तो आप किसी तरह आते नहीं 'निरालाजी अपने बचत का उपाय स्वयं करेंगे। पंत जी ने आतुरता से आग्रह किया, 'आप इसे समझते नहीं मि० सुरेश सिंह, निराला जी निर्भीक होते हुए भी, बड़े भावुक व्यक्ति हैं। सजा हो जाने पर उनके जी को बहुत चोट पहुँचेगी। इसे जैसे भी हो आप को तय करना होगा।'

कुँवर साहब ने आपने बड़े भाई से सब बातें कहीं। वहाँ के पुलीस कप्तान उनके बड़े भाई के दोस्त थे। उनके कहने से मामला दाखिल दफ्तर हो गया। दूसरे

दिन कुँवर साहब ने पंत को बताया कि सब मामला रफा-दफा हो गया। पंत जी ने धन्यवाद देते हुए कहा, 'देखिए यह बात निराला जी को न मालूम होने पावे, नहीं तो वह न जाने क्या अर्थ लगायें।'

विवादग्रस्त साहित्य जगत में यह दृष्टान्त हमें कहाँ दृष्टिगोचर होता है? आज तो लोग एक दूसरे पर कीचड़ उछालने में ही अपनी प्रज्ञा की प्रतिष्ठा समझते हैं 'निज परिताप दहै नवनीता, पर दुख दहै सन्त सुपुनीता।' पंत का सम्पूर्ण जीवन ही मानवीय गरिमा के अवदानों से परिपूर्ण है।

पंत जी कृशकाय एवं कोमल होते हुए बड़े कष्ट सहिष्णु भी थे। वह अपने कष्ट के लिए किसी को उत्तरदायी नहीं मानते थे, भले ही कष्ट का कारण, उनके पास में रहने वाला व्यक्ति ही क्यों न हो? सितम्बर ५० में पंत जी दिल्ली गये थे। वहाँ उनकी भेंट उनके एक सहपाठी भोलादत्त पंत से हुई, जो अमेरिका से लौटे थे। उन्होंने अपने सुन्दर कृत्रिम दाँत दिखाते हुए कहा, 'सब रोगों का मूल बुरे दाँत हैं। पंत जी के मन में यह बात घर कर गई। इलाहाबाद आकर वह सायं ६ बजे दाँत निकलवाने अकेले ही चले गये, क्योंकि उनके दाँतों में कुछ दर्द रहा करता था। दाँत निकालने के बाद उन्हें महसूस हुआ कि मुँह खून से भर गया है। उन्होंने डाक्टर से बताया। उसने कहा घर चले जाइये और बरफ चूसिए, खून बन्द हो जायेगा। घर आकर नौकर से बर्फ लाने को कहा, नौकर ने खाना बनाने का बहाना लेकर, बर्फ लाने में विलम्ब किया। उधर पंत जी के दाँतो से खून निकलना जारी रहा, उनके कपड़े तौलिए खून से भर गये। वह अशक्त हो गये, और लगा कि कुछ अघटित हो सकता है। रात भर कई डाक्टरों की दौड़धूप रही लेकिन किसी के उपचार से लाभ नहीं हुआ। अन्त में एक डाक्टर ने घाव को प्लग कर दिया तो खून रुका।' सुश्री शाँति जी के अनुसार कुछ दिन बाद उनसे पूछने पर कि, तुम्हें उस डाक्टर पर क्रोध नहीं आया; घबराहट नहीं हुई? पंत जी मुस्करा कर बोले 'मैंने सब कुछ ईश्वर पर छोड़ दिया था। मैं जानता हूँ, उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता। उसका दिया हुआ जीवन है। लेना चाहे ले ले, अपने को क्या?'

इस अशक्त अवस्था में भी कभी उन्होंने अपने लेखन कार्य से विश्राम नहीं लिया। अधिक रक्तस्राव के कारण वह ज्यादा देर तक बैठकर नहीं लिख सकते थे, किन्तु उन्हें अपने वचन निर्वाह का पूरा ध्यान था। दो अक्टूबर १९५० को गाँधी जी की जन्म तिथि पर उन्हें एक काव्य रूपक 'शुभ्र पुरुष' लिखकर आकाशवाणी को प्रसारण के लिए देना था। ऐसी स्थिति में केवल चाय और फल का रस पीकर रुग्णावस्था में भी उन्होंने दो ही दिन में 'शुभ्र पुरुष' काव्य रूपक लिख कर दे दिया। गाँधी जी के विषय में उनका कहना था कि, 'गाँधी जी प्रार्थना

समय में—बाइबिल, कुरान, गीता आदि के पाठ के समय—सबको देखते रहते थे, किन्तु, 'रघुपति राघव राजाराम' की ध्वनि के साथ आँखें बन्द कर लेते थे। भजन पूरा होने पर आँखें खोलते थे। सजल, द्रवित आँखें। लगता था आँखें नहीं हैं, ओस की दो बूँदें हैं, स्वच्छ निर्मल आकाश सी, विकाररहित आकांक्षा रहित। वे अद्वितीय पुरुष थे।'

पंत जी के निर्मल स्फटिक सदृश हृदय में, सत्य की परछाई पड़ती थी, और उसमें मसृण धवल बिम्ब अंकित हो जाते थे जैसे चित्रकूट में स्फटिक शिला पर राम के चरण चिह्न। उनका मोहक मृदुल व्यक्तित्व अपनापन छोड़कर, पवित्रतम, बालसुलभ क्रीड़ा में रम जाता था,—चाहे वह राजू बिल्ला हो, चाहे छोटी चिड़िया, चाहे निरीह खेलता शिशु। परिवार के सदस्य और परिजनों में उन्हें कोई भेदभाव नही था, चाहे उनकी ममेरी बहन शांति जोशी हों या मटरू नौकर वह सभी की आवश्यकता को समझते थे, और भरसक उसकी पूर्ति का प्रयास करते थे।

पक्षियों और कोयल की 'कुहू, कुहू' में निमग्न होते हुये वे कहते थे 'कवि को कभी अपनी कविता के भविष्य के बारे में नही सोचना चाहिये। कोयल कैसे गाती है कुहू, कुहू। यह आनन्द है भगवान का। इस आनन्द को सहज अभिव्यक्ति देते समय, कि कौन क्या सोचेगा, क्या मूल्यांकन करेगा, निरर्थक है……। इस जीवन में कर्म ही सब कुछ है। कर्म के लिए ही सृष्टि हुई है। बिना कर्म के यह धरती बंजर होती। इसकी हरियाली का स्रोत कर्म है और यह कर्म और हरियाली आनन्द है।'

१८ बी/७ स्टेनली रोड के लान को उन्होंने, गन्धराज, सहजन, गुड़हल, कचनार, गुलाब वधूलता, बेगमबेलिया, गुलमोहर, मोगरा, बेला, रजनीगंधा, हरसिंगार, रक्तअशोक, सोनजुही, रजनीगंधा, सोनचमेली और लिली आदि विविध पुष्पों पल्लवों से सँवारा और उनकी देखरेख में तल्लीन होते हुए उनके विकास और मुकुलित दृश्यों को देखकर मुग्ध हो जाते थे। कभी-कभी सघन पुष्पों की छाया मे एकान्त रचना क्रम में कहते थे, 'सचमुच रचना प्रकृति के नीरव क्रोड में ही होती है। पेड़-पौधे लताएँ और प्रकृति सब कितने प्रसन्न हैं, किन्तु मनुष्य ने अपना जीवन कितना दुखमय बना लिया है।' सबेरे वह बगीचे में जाते थे। नव-प्रस्फुटित पुष्प को अपने होंठों से चुमकारते थे जैसे कोई सद्यः प्रसूत शिशु हो, अपने हाँथो से उसे दुलारते थे, और प्रेम भरी दृष्टि से देखते थे। जब कोई अंकुर माली की असावधानी से सूख जाता तो, कहते, 'मैंने इसे पाला-पोसा, और माली ने इसे मार डाला' मालियों को हमेशा सहेजते रहते। अनायास फूल तोड़ना उन्हें बुरा लगता था।

साहित्य के शिखर को छूकर भी उन्हें अपनी ऊँचाई का अभिमान नहीं हुआ। अपनी षष्ठिपूर्ति के अवसर पर दिल्ली से लौटने पर उन्होंने कहा, 'सबने कितना प्रेम-स्नेह दिया। किन्तु मैं अपने को इस योग्य नहीं देख पाता हूँ। सच मुझे वहाँ बड़ी लज्जा का अनुभव हुआ।'

इसी प्रकार सन् १९६० में 'कला और बूढ़ा चाँद पर उन्हें पाँच हजार रुपये का साहित्य-अकादमी पुरस्कार मिला। उस समारोह में साहित्य अकादमी के सभापति पंत जी के पूरे नाम का उच्चारण शुद्ध रूप से नहीं कर सके। इससे दुखी होकर पंत जी ने कहा 'इससे अच्छा यही होता कि सरकार हिन्दी को मान्यता न देती। हिन्दी में यदि क्षमता होगी तो वह अपने आप जियेगी।'

'हिन्दी को वह देश की सांस्कृतिक एकता और उन्नति के लिये आवश्यक मानते थे। वह कहते थे, मैं जानता हूँ कि बिना भारतीय-भाषाओं के देश प्रबुद्ध नहीं हो पायेगा, विदेशी भाषा सदैव उसे मानसिक रूप से दास बनाये रक्खेगी।' डॉ० रामकुमार वर्मा से आकाशवाणी इलाहाबाद (२१-७-६९) के लिए ली गई एक भेंट वार्ता में 'हिन्दी काव्य के भविष्य के विषय में' पंत जी का मत है कि, 'हिन्दी काव्य का भविष्य ? यह तो बहुत उज्जवल है। मैं तो मानता हूँ कि विश्व की बड़ी-बड़ी भाषाओं में यह एक भाषा मानी जाने लगेगी। क्योंकि भारत के पास एक अध्यात्म कहिये, या एक अधिदर्शन कहिये, वह है। उस पर जब मनुष्य सृष्टि आधारित होगी और उस प्रकाश को, उस शान्ति को, उस सौन्दर्य को, उस प्रेम को, उस आनन्द को जब हिन्दी वाणी देगी तो, उससे संसार का मन आप्लावित हो उठेगा। इसी कारण मुझे हिन्दी का भविष्य बहुत ऊँचा दिखाई देता है। हिन्दी को मैं चेतना मानता हूँ। उसे शब्दों का ढेर नहीं मानता।'

देश और हिन्दी की दुर्दशा देखकर पंत जी दुखी भी होते थे। जून १९७१ में बच्चन के नाम अपने पत्र में उन्होंने लिखा था, 'हिन्दी की हालत वही है, जो देश की हालत है—लोगों की मनोदशा है। ठीक है अपने समय में सभी चीजें साफ हो जाएँगी—हिन्दी, हिन्दी प्रदेशों की भाषा रहे तो बहुत है, अन्य भाषायें भी फलें-फलें और राजभाषायें बनें—जिस देश में खाने-पीने को नहीं वहाँ के लोग भाषा-प्रेम नहीं जान सकते—जिस देश के अन्तर में प्रकाश नहीं, प्राणों में सच्छक्ति की साधना नहीं, उस देश के वासियों के लिए अन्धकार में ही भटकना, अनाचार के पंक में मग्न रहना स्वाभाविक है।'

जनवरी सन् १९६१ में पंत को पद्मभूषण की उपाधि मिली और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन को 'भारत रत्न' की। इस सम्बन्ध में टंडन जी ने श्री वियोगी हरि के पत्र के उत्तर में लिखा है,' मुझे उतार-चढ़ाव की उपाधियाँ देने का सरकारी क्रम अच्छा नहीं लगता। इसमें गवर्नमेंट को अन्तर करना पड़ता है परन्तु वह

12-6-80

सूक्ष्म न्याय नहीं कर सकती। सुमित्रानंदन पंत को नीची उपाधि दी गई। मुझे ऊँची उपाधि मिली। यह सच है कि मैं आयु में बड़ा हूँ और पुराना कार्यकर्ता भी हूँ, परन्तु मैं यह जानता हूँ कि मुझे जब लोग भूल जायेंगे, तब सुमित्रानंदन पंत की कविता पढ़ी जायेगी।

—जनता स्वयं अपने आदर के पात्रों को समय-समय पर पहचान लेती है। यह सरकारी क्रम बन्द हो जाये तो अच्छा। (पुरुषोत्तमदास टंडन का पत्र श्री वियोगी हरि के नाम—कादम्बिनी १६७६)।

राजर्षि टंडन सदृश संत राजनीतिज्ञों के हृदय में ऐसे भावों का प्रस्फुटन निश्चय ही पंत के कीर्ति की पताका है। हिन्दी की मर्यादा की रक्षा के लिए वह सर्वदा सजग रहे। जब सेठ गोविन्ददास ने हिन्दी के प्रश्न पर 'पद्मभूषण' की उपाधि लौटा दी तो, तो प्रयाग के कुछ उत्साही साहित्य प्रेमी नवयुवक डा० राम-कुमार वर्मा के निवास स्थान 'साकेत' प्रयाग स्ट्रीट पहुँचे। वर्मा जी प्रयाग से बाहर थे। इसी जोश-खरोश में लोग पंत जी के निवास स्थान पर पहुँचे। पंत जी बाहर आये, उन्हें देखकर छात्र नेता चुप हो गये। पंत जी ने पूछा, कहिये कैसे कष्ट किया। 'छात्र नेताओं की टोली में से एक (डा० राजकुमार शर्मा) ने कहा, पंत जी हिन्दी के प्रश्न पर सेठ गोविंददास ने 'पद्मभूषण' की उपाधि लौटा दी है, हम चाहते हैं आप भी······।' पंत जी बीच में ही टोककर बोले, 'समझ लीजिये, मैंने भी उपाधि लौटा दी। इतनी छोटी सी बात के लिए इतना बड़ा हंगामा ! मैं अभी लौटा देता हूँ। आपके ही सामने आकाशवाणी वालों को कह देता हूँ। मुझे आप लोगों के उत्साह को देखते हुये अपार हर्ष हो रहा है। मुझे इसका तो दुख है कि अपने ही देश और अपने ही राज्य में अपनी ही भाषा को उचित स्थान प्रदान कराने के लिए हमें संघर्ष करना पड़ रहा है। किन्तु मैं आज आश्वस्त हूँ कि आप जैसे नवयुवकों के रहते हम बुर्जुगों का मन आश्वस्त है।' पंत जी ने उसी समय आकाशवाणी को पद्मभूषण त्याग की सूचना दे दी, और आकाशवाणी से वह समाचार प्रसारित हुआ (राष्ट्रभाषा सन्देश—७८)।

प्रशस्ति एवं प्रलोभनों से दूर रहने वाले पंत जी हिन्दी साहित्य के अनन्य सेवी और सर्जक थे। जब भी भाषा, राष्ट्र, या संस्कृति पर कोई आँच आई, वह तुरन्त सजग हो गये, और उसके लिए किसी भी तरह के त्याग और संघर्ष में पीछे नहीं हटे।

पंत जी के ऐकांतिक जीवन में आत्मा की सुगंधि थी। वह अपने में ही मुग्ध, प्रकृति और पशुपक्षी की भाषा में तल्लीन सर्वात्मा थे। किसी से कोई दुराव नही प्रुमुआ, राजू बिल्ले की म्याऊ, म्याऊ, छोटी चिड़िया की किलक उन्हें आत्म-विभोर कर देती थी। उनके सुख के लिए वह रात-रात भर जागकर उनकी आहट सुनते

रहते थे उनके सोने, खाने-पीने की व्यवस्था म सुख प्राप्त करते थे। कौन होगा पंत सा विशुद्ध हृदय वाला जो कण-कण में परमात्मा का संगीत सुनता है?

सुश्री शाँति जोशी के अनुसार १२ अगस्त ६४ को एक डेढ़ माह के बिल्ले को घर लाया गया। उस बिल्ले का नाम था राजू। पंत जी राजू के प्रेम में इतना मग्न हो गये कि उसकी हर सुख सुविधा का ध्यान स्वयं रखने लगे। उसके लिए ताजा दूध और ताजा भोजन तैयार रखते थे। ताजा दूध या भोजन न मिलने पर वह दो-दो तीन-तीन दिन गायब रहता था, और कभी-कभी खाना ही नहीं खाता था। इस पर कभी-कभी पंत जी नौकरों पर बिगड़ जाते थे और एकाधबार तो इस असावधानी के कारण किसी नौकर को नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा। वह कहते थे, 'मैं वीतराग नहीं हूँ, अपने पुसुआ को प्यार करता हूँ।' जब मैं पुसू, पुसू कहता हूँ तो मेरे भीतर से म्याऊ, म्याऊ सुनाई देती है। पुसुआ जी आपका कोई कसूर नही है। यह आपकी नाक है, जो बड़ी तेज है और आपको बासी नहीं खाने देती। 'यह पुसुआ की बहुत बुरी आदत हो गई है। ताजा खाना नहीं खाता है। आधी रात को आता है। खैर मेरी तो उसे छत से उतारने की आदत हो गई है, पर उसके लिए बुरा हुआ। तन्दुरुस्त नहीं रह पायेगा। पगुलआ है, ४८ घंटे हो गये हैं, खाना नहीं खाया है। मेरा मन कहता है, आज रात को जरूर आयेगा। पहिले बुबुकी (प्यार) लूँगा, तब खाना दूँगा। मेरे साथ सो रहता तो कितने प्यार से सुलाता। कितनी अच्छी पूँछ है, जब तक पूँछ तक दूध नहीं पहुँच जाता तब तक पीता है।' पंत जी पुसुआ की प्रतीक्षा जाग कर करते और कहते, 'तुमने बाहर की रोशनी क्यों बन्द कर दीं। जाकर जला आओ। पुसुआ के आने का समय है। अँधेरा देखेगा तो बुरा लगेगा, सोचेगा, मेरी उपेक्षा करते हैं। रात का निमन्त्रण मैं हरगिज स्वीकार नहीं करूँगा। पुसुआ जी, आयेंगे। खिला तो आया भी देगी पर उसे वह अच्छा नहीं लगेगा। वह सेवाभाव का प्रेमी है।'

यही आत्मीयता या सेवाभाव 'पंत जी' को कवियों और साहित्यकारो से भी ऊँचे उठाकर महामानवों की कोटि में रख देती है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' की भावनां की साकारमूर्ति पंत जी का व्यक्तित्व था। उन्हें देखकर कोई भी बिना आकर्षित हुये नहीं रह सकता था। सहज स्नेह और स्निग्ध वाणी पंत जी की विभूति थी जो सभी को आप्लावित करती रहती थी। पशु-पक्षी और शिशुओं के साथ उनका वात्सल्य उमग पड़ता था, वह उन्हें माँ का सा प्यार देते थे, संभवतः यह प्यार उनके मातृ-हीन जीवन की सम्पूर्ति थी, जो उन्हें नहीं मिला, उसे वह भरपूर बाँट रहे थे।

आखिरकार, 'राजू' से पंत जी का बिछोह हो गया। उसके निधन से 'पंत' के मन में सूनापन आ गया। इस अभाव की पूर्ति के लिये सुश्री शाँति जोशी ने

२८ जून १९७१ को एक बच्ची को गोद ले लिया, जिसे उन्होंने पाँच मई १९७१ को स्वप्न में देखा था। पाँच मई ७१ को ही इस बच्ची का जन्म हुआ। जब उस बच्ची को लेकर शाँति जी घर आईं तो उसे देखते ही 'पंत जी' अत्यन्त मुग्ध हो गये। उन्होंने उसकी जन्मपत्री बनाई, और अनेक ज्योतिषियों को वह जन्मपत्री दिखाई। उनके लिए अब दो ही चीजें मुख्य थीं। भारत का भविष्य और 'सुमिता' का भविष्य वह अब 'सुमिता' के कारण जीना भी चाहते थे।

बच्ची को 'सुमिता का' नाम तो दे दिया गया किन्तु, कुलनाम देने मे विचार-विमर्श हुआ, और 'पंत जी' ने 'शाँति जोशी' से कहा, 'कुलनाम' मत दो, तुम जोशी नाम दोगी तो मुझे बुरा लगेगा और 'पंत' नाम देने में तुम्हें बुरा लगेगा। वैसे यह बेटी भगवान् ने मुझे ही दी है, उसने कहा, 'धिक्कार है तेरा जीवन, यदि तूने बच्चे की सेवा नही की। मेरे अपूर्ण जीवन को भगवान् ने पूर्ण बना दिया है।''

'तुमको पाकर मैं प्रिय सुमिते आज गोद में,
अनुभव करता हूँ, चरितार्थ हुआ अब जीवन।'

'सुमिता के पालन पोषण में पंत जी अत्यन्त व्यस्त हो जाते, उसे ठण्ड लग जाय, रोने न पाये, कोई कुछ कहे न, डाटे न, उसके सुकोमल भाव मुरझा न जायँ। फूल के पंखुड़ी सी बच्ची कहीं लू न लग जाय। कभी-कभी सुश्री जोशी से कहते, 'यह मेरी पोती, पड़पोती के समान है। इसे मैं केवल प्यार दे सकता हूँ। तुम्ही सोचो यदि मेरा परिवार होता, तो मेरी पोती, पड़पोती इतनी बड़ी होती।'

पंत जी के जीवन में अपने परिवार का अभाव रहा। सुमिता को पाकर उनका अपूर्ण जीवन पूर्ण बन गया, भले ही वह उनकी अपनी बच्ची नहीं थी। आत्म-संस्कारित पुरुष के लिए परिणय सस्कार आवश्यक भी नही है, क्योंकि जब आत्मा विराट बन जाती है तो सृष्टि के कणकण से आत्मीयता हो जाती है। आत्मोत्कर्ष-दैहिक संसर्ग से कहीं ऊपर है। इसी आत्मोत्कर्ष के बल पर पंत जी आजीवन परिणय-सूत्र में न बँधकर भी विवादों से ऊपर रहे। फिर भी कभी-कभी साहित्यकारों और समीक्षकों ने उनके इस पक्ष को कुरेदा है। वरिष्ठ साहित्यकार कैलाश कल्पित ने एक बार पंत जी से पूछा,—'पंत जी आपने कौमार्य जीवन क्यो व्यतीत किया? आपकी कविता 'ग्राम युवती' पढ़ने से आभास मिलता है कि नारी के रूप से आपको पूर्ण आकर्षण मिला, फिर भी आप नारी के संपर्क की ओर से उदास रहे। क्यों?'

पंत जी ने अपने उत्तर में लिखा है, 'आपने विवाह के विषय में पूछा है, सो मैं कहता हूँ कि शादी न करके मैंने कोई गुनाह नहीं किया है। निराला जी ने

शादी की, पत्नी मर गई। उन्हें उसके अभाव में कुछ खोना पड़ा। शादी न करके मैंने कुछ खोया नहीं, मुझे उसके अभाव की अपेक्षा भी नहीं। यौवन-काल मे अपनी रचनाएँ बराबर प्रकाशित होती रही थी। लिखने में मस्त रहा। अपना ध्यान उधर कम ही रहा। स्वास्थ्य भी एक कारण है। 'ग्राम-युवती' की चर्चा जो आपने की है, तो प्रकृति के सौन्दर्य से कोई भी मुख नहीं मोड़ सकता। मैं इतना बता दूँ कि स्त्री विरोधी नहीं हूँ।'

कुछ आलोचक पंत जी पर 'क्लीवता' का आरोप लगाते हैं, पंत जी का व्यक्तित्व दुधर्ष, उद्धत और उग्र नहीं था उनमें सखिभाव था। मेरे विचार से उग्रता और आवेश भी दुर्बलता के परिचायक हैं जो आत्मनियंत्रण नहीं कर सकते वे अनेक स्थानों पर उग्र एवं स्खलित होते हैं। पंत जी आत्मनियंत्रित थे अत काम और क्रोध पर नियन्त्रण पाना उनके लिए सम्भव था। वह आस्तिक थे अतः उनका योग-क्षेम ईश्वर वहन करता था। साहित्य-साधना के उच्चतम शिखर को छूकर भी वह अभिमान विहीन थे। प्रकृति का प्रेम उसका सौकुमार्य एव माधुर्य, इस लोक में पदार्पण के साथ ही उनकी साँस-साँस में घुल गया था। प्रकृति उनकी सहचरी एवं संगिनी थी। वह उनसे बातें करती थी और उन्हे प्रेरित करती थी। उन्होंने लिखा है, 'मैंने प्रकृति से तादात्म्य कर अपने को नारी रूप में अंकित किया है। कारण यह कि जहाँ प्रकृति को मेरे भीतर से बोलना पड़ा, वहाँ ऐसा ही होना पड़ा। प्रकृति स्त्रीलिंग है और मैं उसका एक अंश हूँ। अपने विचार से रहस्यवाद में मैं उतना पारंगत नहीं हो पाया जितना प्रकृति-चित्रण में। 'प्रकृति के चित्रों को मैंने यथावत चित्रित करने की चेष्टा की और उस समय मुझे प्रकृति का माध्यम बनकर स्त्रीवाचक बोलना पड़ा।'

पंत जी यथासम्भव किसी को निराश नहीं करते थे। उनके द्वार पर जो भी गया उसे स्नेह और सद्भाव मिला। दरवाजा खटकने के साथ ही वह बीमार हालत में भी बाहर चले आते थे और स्वयं दरवाजा खोलते थे, 'तुम लोग दरवाजा खोलने में देर कर देते हो, मुझे पसन्द नहीं कि कोई बाहर खड़ा रहे।' उनके मन में सभी के प्रति आदर भाव था। वह कहते थे दूसरे का व्यक्तित्व भी स्वत मूल्यवान है। वह किसी की भावना को आहत नहीं करते थे। किसी के हित की बात हो और वह, तनिक भी अच्छी, ठीक बात हो, पंत जी अवश्य उसे पूरा करते थे, वह उसे अपनी सम्मति और सहायता देते थे। इसी बात पर महादेवी वर्मा जी कहा करती थीं कि 'क्या मैं पंत जी हूँ, जो, जो चाहे करा ले।' यह पंत जी की उदात्तता थी कि उनका कोई ग़ैर नहीं था, सभी अपने थे।

अपने में ही मस्त रहने वाले बच्चों की तरह पंत जी का स्वभाव था। बाल-सुलभ चेष्टा के अनुरूप अपने पसन्द की सभी चीजें अपनी अटैची में सुरक्षित

रखते और कभी-कभी उन्हें देखते थे और प्यार से चुमकारते थे। वृद्धावस्था मे भी उन्होंने बचपन संजोया था। दुनिया भर की चीजें उनकी अटैची में मिल जाती थी, 'पुराना पैसा, छेदवाला पैसा, नया पैसा, नेहरू पैसा, गाँधी जी वाला दस रुपया, नयी चमकीली मुद्राएँ, दवाई की शीशियों के साथ मिले रंगीन कटोरे, गिलास छोटे-छोटे ताले, बच्चों के कपड़े में लगने वाली बिल्ली, चमकीला पत्थर भभूत—फूल, रूमाल, फाउन्टेन पेन, फूल बना पत्थर, छोटी-छोटी डिबिया, प्लास्टिक के कछुवा, बन्दर आदि''''। सभी को सहेज कर रखना कोई इसे इधर-उधर न कर दे। कितना निरीह और पावन संस्कार था पंत जी मे।

सहयोगी मुद्रण तथा प्रकाशन सहकारी समिति लि० इलाहाबाद के सचिव के रूप में मैंने एवं मेरे कवि मित्रों ने 'काव्य-कलश' के नाम से एक संकलन छापने का निश्चय किया, जिसमें उन्नीस कवियो की कविताएँ संग्रहीत हैं। इस सम्बन्ध मे मैने पंत जी को उस पुस्तक की पाण्डुलिपि सम्मति के लिए दी। पाण्डुलिपि को पढने के बाद १-१२-७७ को पंत जी ने उस पर जो सम्मति दी वह निम्नलिखित है—

'वाणी के भव्य मन्दिर को नई प्रतिभा के प्रयत्नों ने स्वर्णिम काव्य कलश से संजोकर युग के अनुरूप सृजन-सौन्दर्य प्रदान किया है इसे देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है। युग-चेतना से प्रेरित नये कवियों ने हृदय-स्पंदन से झंकृत रचनाओ का सकलन कर प्राचीन रुढ़ि-जन्य शिल्प को ही नवीन दिशा प्रदान नही की उन्होंने काव्य-चेतना को भी नई-दृष्टि के आलोक से मण्डित किया। उनका सामूहिक प्रयास काव्य-प्रेमियों का ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहेगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं है। गीत और अगीत का, छन्द बद्धता और छन्द मुक्ति की ऐसी सम्मिलित शिल्प-सृष्टि में अनेक सूक्ष्म सौन्दर्य के रूप देखने को मिलते हैं।

नई-पीढ़ी की कविता के लिए यह काव्य-कलश वाणी के नये ऐश्वर्य से मन मे नयी आशा का संचार करता है। निस्सन्देह नयी कविता आगे बढ़ रही है। इस सग्रह की रचनाओं का प्रत्येक चरण समय से प्रतीत होता है। संयोजकों को हार्दिक बधाई देता हूँ।'

सभी को आशुतोष की तरह आशीष देने वाला साहित्य-कल्पद्रुम अब कहाँ मिलेगा, जिसकी छाँह तले, नवांकुर अपना अप्रतिहत विकास कर सके। अब तो कुण्डलीमार पुरोधा हैं। पंत जी का दृष्टिकोण समन्वयवादी था किन्तु उनके नीतिगत एवं विचार स्वातन्त्र्य पर यदि कभी कोई आक्षेप या आँच आती थी तो वह दृढ़ हो जाते थे। 'परिमल' और प्रादेशिक प्रगतिशील लेखक के सम्बन्ध में, एक बार उनके वक्तव्य को बिना उनकी अनुमति के तोड़ मरोड़कर पत्र में छपवा दिया गया, जिससे पंत जी क्षुब्ध हो गये और उन्होंने 'परिमल' की

सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया। इस सम्बन्ध में २२, अक्टूबर १९५२ को दैनिक भारत में प्रकाशित उनके वक्तव्य का कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है—
'.....मेरी समझ में यह विवाद मूलतः प्रगतिशील लेखक संघ के आयोजन से उतना सम्बन्ध नहीं रखता, जितना कि आज की वामपंथी प्रगतिशीलता से, जो कुछ वर्षों से अत्यन्त संकीर्ण मतवाद के दलदल में खो गई है—और जिसका कारण सम्भवतः यह है कि प्रगतिशील लेखक संघ में अप्रगतिशील सदस्यों की संख्या इतनी बढ़ गयी है कि उन्होंने अपने और अन्य लेखकों के बीच कुण्ठित विरोध की गहरी खाँई खोद दी है।

प्रायः सभी देशों में आज वाम और दक्षिण प्रगतिशील विचारधाराएँ विद्यमान हैं और बहुत ऐसे लेखक है जो अपने युग की चेतना के संस्पर्शों से वंचित हैं। मैं तथाकथित वाम-दक्षिणपंथी मान्यताओं को—जिनमें आर्थिक एवं राजनीतिक के साथ सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मान्यताएँ भी सम्मिलित हैं और जिन सबका विकास और रूपान्तर होना अवश्यम्भावी है—सदैव से अखण्ड अथवा अविच्छिन्न सोपान की तरह मानता आया हूँ। दोनों प्रकार की मान्यताओं में परस्पर का विरोध खड़ा करना, केवल अपने, अपने दल की संकीर्ण एकांगी दृष्टि का परिचय देना है, और दोनों ही दलों के अनुयायियों में इस प्रकार की मनोवृत्ति अत्यधिक मात्रा में वर्तमान है। मैं चाहता हूँ कि साहित्य तथा संस्कृति के क्षेत्र मे लेखकों अथवा विचारकों को व्यक्तिगत या संघगत मानापमान की थोथी भावना पर नियंत्रण रखकर परस्पर सहानुभूति तथा सद्भावना का वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे दक्षिण-वामपंथी मान्यताओं तथा प्रगतिशील प्रतिगामी विचार-धाराओं सम्बन्धी दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण तथा विकास के लिए उपयुक्त तथा उन्मुक्त परिवेश का निर्माण किया जा सके। मैं दोनों वर्गों से निवेदन करना चाहता हूँ कि सामूहिक तथा सांस्कृतिक समन्वय के महत्त्वपूर्ण प्रश्न को उन्हें व्यक्तिगत या दलगत कुण्ठा तथा अहंकार से वशीभूत होकर और भी जटिल और दुर्बोध नहीं बनाना चाहिए।......अतएव अपने उपर्युक्त समन्वय के दृष्टिकोण को सामने रखते हुए मुझे इसमें किसी प्रकार की आपत्ति प्रतीत नहीं होती कि सभी भाषाओं के दक्षिण-वामपंथी प्रगतिशील लेखक अपने पंथ की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर आगामी आयोजन में सम्मिलित हों और साहित्य तथा संस्कृति के स्तर पर इस युग की मान्यताओं संबंधी उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न करें। हमारे युग की सांस्कृतिक, पुकार है सद्भाव, विद्वेष नहीं, व्यापक दृष्टिकोण---संकीर्णता नहीं, मनुष्यत्त्व का सर्वांगीण विकास, एकांगी बुद्धि नहीं।.... आज के सृजनशील साहित्यजीवी के कंधे पर अत्यन्त महान् उत्तरदायित्व है। निकट भविष्य में राजनीतिक दुराग्रह का स्थान ——— को लेना ही पड़ेगा ऐसा मरा दृढ़ विश्वास है

पंत का समन्वयवादी दृष्टिकोण, उनका आत्मीयभाव, निरभिमान व्यक्तित्व, एव उनकी भागीरथ साहित्यिक साधना ने बड़े-बड़े मनीषियों एवं साहित्यकारो को प्रभावित किया है, भले ही तथाकथित प्रगतिशील, प्रयोगवादी एवं पृथकवादी, असन्तुष्ट रचनाकर्मियों के लिए, वे उनकी पहुँच के बाहर रहकर, अपठनीय एव केवल आलोचनीय रहे हैं। जिह्वा-स्वाद की तरह आलोचकों के भी अपने-अपने स्वाद हैं, वह अपने स्वादानुसार साहित्य को भी ग्रहण करते हैं। किन्तु यथार्थवादी भूख के साथ मनुष्य की आत्मिक संतुष्टि भी कुछ अर्थ रखती है। संस्कारहीन यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ विघटन की भावना ने आज समाज को संत्रस्त किया है।

पंत जी के आत्मीय संस्मरणों में डॉ० राम कुमार वर्मा ने (१६७७) राष्ट्र-भाषा सन्देश में लिखा है, 'मैं तो इस गर्मी में यहीं रहा हूँ। किन्तु तुम गर्मी के बाद मुझसे कैसे मिल सकोगे मेरे भाई पंत, तुम तो बिना बताये एक रात संसार से ही चले गये? तुम्हारी स्मृति आने पर सोते समय मैं अश्रु-धारा से तुम्हारा पथ आर्द्र कर लेता हूँ कि तुम स्वप्न में ही मिल जाओ, पर शायद तुम बहुत दूर चले गये हो, जहाँ से तुम अब कभी नहीं लौटोगे।'

पंत जी की काव्य-साधना के सम्बन्ध में डॉ० राम कुमार वर्मा जी का मत उद्धृत किया जा रहा है, 'सम्राट सगर के साठ हजार पुत्रों के उद्धार के लिए तपस्वी भगीरथ को इस भूमण्डल पर गंगा की धारा प्रवाहित करने का श्रेय प्राप्त हुआ। साहित्य के क्षेत्र में भी एक तपस्वी हुआ, जिसने भारती की भागीरथी, साहित्य के कुंजों को सींचने के लिए इतिहास के अन्तराल मे प्रवाहित की। इस तपस्वी का नाम सुमित्रानन्दन पंत है। हिम-पर्वत से ही भागीरथी की धारा प्रवाहित हुई है। पंत जी ने भी कूर्माचल से कविता की धारा का पथ-निर्देश किया। कल-कल वाहिनी धारा का नाद जितना मधुर है उतना ही मधुनाद पंत की कोमल-कात पदावली का है।'

जिन्होंने पन्त की आत्मिक एवं साहित्यक स्नेहधारा की स्रोतस्विनी का तनिक भी संस्पर्श किया है, वे बिना रससिक्त हुए नहीं रहे, चाहे पाषाण-हृदय क्यो न रहे हों। रचनाकारों के प्रति अगाध प्रेम, अकलुष मन, सहज स्मिति एव असीम धैर्य, पन्त जी के स्वाभाविक सद्गुण थे।

नौ दिसम्बर १६७७ को मेरे मन में विचार आया कि, महामानव, महाकवि पन्त जी के साथ 'सहयोगी मुद्रण तथा प्रकाशन सहकारी समिति लि०' के रचनाकार सदस्यों का सामूहिक चित्र लिया जाय। मैंने अपने मित्रों से विचार किया सभी तैयार हो गये उसी दिन अपराह्न श्री बाबू लाल सुमन मैं राजाराम शुक्ल गोकुल प्रसाद श्रीवास्तव रामलषण शुक्ल जगदीश शर्मा डा०

राजेन्द्र मिश्र, डॉ० संत कुमार, निर्मल शुक्ल, वृजमोहन श्रीवास्तव 'चंचल', विजय कुमार श्रीवास्तव, डॉ० प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल' कैलाश कल्पित, अंजनी कुमार 'दृगेश' एवं सुकदेव आदि पन्त जी के, १८/बी ७ स्टेनली रोड निवास स्थान पर पहुँचे। अपराह्न दो बजे का समय था। सूरज प्रतीची में झुरमुटों के बीच से झाँकता हुआ गुनगुनी धूप बिखेर रहा था। पन्त जी शीघ्र ही बाहर आकर अपने उपवन में हम लोगों से घुलमिल गये। स्नेहिल और आत्मीय बातें हुईं। इस बीच कैमरामैन श्री साहू जी अपना कैमरा तैयार कर चुके थे। हम लोग अर्धगोलाकार रूप में चित्र के लिए खड़े हो गये। सभी की ललक थी कि पंत जी के बगल में ही रहें। कैमरामैन के निर्देश पर सभी सन्नद्ध हो गये और चित्र ले लिया गया। कुछ देर मिल-जुलकर बातें हुईं। सभी इतने भावसिक्त थे कि बिछुड़ने का मन ही नहीं बना पा रहे थे। विदा तो लेनी ही थी, सभी मित्र धीरे-धीरे प्रणाम करके जाने लगे। अकेला मैं, पंत जी के साथ बातें करते, खड़ा रहा। मेरे सभी मित्र लगभग बीस गज की दूरी तक ही गये थे, कि पंत जी ने मुझे इशारे से सबको पुनः बुलाने के लिए कहा, मैं दौड़कर गया और मित्रों को लौट आने के लिए कहा। पंत जी बाहर द्वार की ओर सड़क पर दृष्टि लगाये हुए थे। सहसा एक कार आई। कार से सुश्री शांति जोशी मिठाई का डिब्बा लिए बाहर आईं, पन्त जी ने डिब्बा अपने हाथ में लिया। उसे खोला और अपने हाथ से सभी मित्रों को स्नेहपूर्वक मिठाई दी, सभी स्तब्ध थे। पंत जी का इतना प्यार। सभी को बिना खिलाये न जाने देने वाले पंत जी का प्यार और समय से मिठाई न पहुँचने की प्रतीक्षा। कितना स्मरणीय दिन था वह। इसी बीच मुस्कराते हुए, उन्होंने कहा, 'किसी का कौन ठिकाना, देखो न, मैं इसलिए सप्रू अस्पताल के पास बसा हूँ कि न जाने कब बुलावा आ जाए और जाना पड़े। 'सभी की आँखें नम हो आईं। 'पन्त जी आप शत-शत वर्षों तक जिएँ। आखिरकार वह कालरात्रि २८ दिसम्बर १६७७ आ ही गई, जब सरस्वती के इस अमर साधक को अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। हृदय रोग का भयंकार आघात, कोमल-कांत कवि के लिए भारी पड़ा और उसने सदा के लिए आँखें मूँद ली, संसार से निर्लिप्त, आत्मतोष के सुख में विश्राम। निरभ्र आकाश की सूर्य रश्मियों में वह स्वर्णकिरण समाहित हो गई। पन्त जी की पंक्तियों में—

तरु शिखरों से वह स्वर्ण-विहग
उड़ गया खोल निज पंख सुभग
किस गुहा नीड़ में वह किस मग'

छायावादी त्रिवेणी की प्रगल्भ स्रोतस्विनी सूख गई। स्नेहिल संस्कृत वाणी विराट में विलीन हो गई अनासक्त आत्मा मुक्त हो गई अंतिम यात्रा

घाट पर लगभग ग्यारह बजे दिन पहुँच गई। कुहासाछन्न शरदाकाश, सूर्य भी सहमा सहमा, जैसे अपनी इस रश्मि को, अग्नि-शिखा से बुला रहा था। गंगा तट पर साठ-सत्तर साहित्यकारों का समूह अपने आत्मीय कवि को श्रद्धाञ्जलि दे रहा था। पन्त जी के भतीजे प्रो० अम्बादत्त ने अंतिम संस्कार किया। सभी की आँखे नम थीं। जो इस यात्रा में नहीं पहुँच सके उन्हें पश्चात्ताप था। राजनीतिक पण्डो को साहित्य और साहित्यकार से क्या प्रयोजन ? पन्त जी का स्मरण संसार एवं साहित्य, उनकी साहित्यिक साधना एवं रचना के माध्यम से करेगा और राजनीतिज्ञो के उनकी समाधियों से। राजनीतिक श्रद्धा समाधि तक जीवित रहती है और सास्कृतिक एवं साहित्यिक श्रद्धा, शब्द-ब्रह्म की भाँति अजर-अमर हो जाती है। पंत जी का पार्थिव शरीर पञ्चतत्त्व में समाहित हो गया किन्तु उनका यश: शेष चिर एवं शाश्वत है।

साहित्यकारों ने दिवंगत आत्मा को श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की और उनके अभाव से रिक्तता का अनुभव करने लगे।

स्मृतियों की इसी परम्परा में मैंने सहयोगी मुद्रण तथा प्रकाशन सहकारी समिति लि० इलाहाबाद के तत्वाधान में २१ मई १९७८ को पन्त जी के ७८वें जन्मदिवस की स्मृति में एक आयोजन प्रयाग संग्रहालय इलाहाबाद में किया जिसमें महीयसी महादेवी वर्मा, न्यायमूर्ति पं० हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी, डॉ० जगदीश गुप्त, श्री एस० सी० काला, तत्कालीन निदेशक प्रयाग संग्रहालय इलाहाबाद, उपस्थित थे। इस आयोजन में, श्री हृदय नारायण अग्रवाल, आई० ए० एस० तत्कालीन प्रशासक नगर महापालिका को मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया गया था। इस आयोजन के माध्यम से श्री अग्रवाल जी को समिति की ओर से एक प्रस्ताव दिया गया जो निम्नांकित है—

१ 'आज की इस पावन वेला में दिवंगत महाकवि पं० सुमित्रानन्दन पन्त का अभाव हमें खल रहा है, किन्तु उनके इस पुण्य जन्मदिवस पर हम प्रकृति के उस सुकुमार कवि का स्मरण कर भावविह्वल हो जाते हैं, और हमें लगता है, कि वह यहीं कहीं फूलों-पत्तियों में सुवास के समान विचर रहे होंगे। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनका यह पुण्य-स्मरण साहित्यकारों को सदा अनुप्राणित करता रहे और आपसे निवेदन करते हैं कि आप उनके ७८वें जन्म दिवस पर प्रयाग संग्रहालय के सम्मुख स्थित बालउद्यान को 'सुमित्रानन्दन पन्त बाल उद्यान' का नाम देकर उस महाकवि का यथोचित सम्मान करें।

२. महाकवि पन्त मानवता के पोषण हेतु निरन्तर सत्यं, शिवम् सुन्दरम्' का सन्देश देते रहे। अत: निवेदन है कि 'मिशन रोड का नाम', "महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त मार्ग" रक्खा जाय।

३ अपने अंतिम दिनों में पन्त जी जिस मकान में रहते थे, वह राष्ट्रीय निधि के रूप में संरक्षित रक्खा जाए एवं वहाँ एक शिलालेख लगाया जाय, जिस पर महाकवि का नाम एवं वहाँ पर उनका निवास-काल अंकित किया जाय।

आप सदृश सहृदय कुशल प्रशासक के सम्मुख यह निवेदन प्रस्तुत कर हम आशावान् हैं कि आप इस पुनीत कार्य को पूर्ण करने का अथक प्रयास करेंगे।

भवदीय
राजाराम शुक्ल
२१-५-७८
सचिव
सहयोगी मुद्रण तथा प्रकाशन सहकारी समिति
लि० इलाहाबाद (निबन्धन सं० ३२४३)

सेवा में,
श्री हृदय नारायण अग्रवाल
(आई० ए० एस०)
प्रशासक नगर महापालिका
इलाहाबाद

श्री हृदय नारायण अग्रवाल जी एक साहित्यिक एवं सुरुचिपूर्ण प्रशासक थे। उन्होंने तत्काल आश्वासन दिया कि बाल-उद्यान को पं० 'सुमित्रानन्दन पन्त बाल उद्यान' का नाम दिया जायेगा। उन्होंने इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाही की और आज प्रयाग संग्रहालय के सम्मुख 'सुमित्रानन्दन पन्त बाल-उद्यान' उनकी स्मृति के रूप में विद्यमान है। अवश्य ही प्रकृति का वह सुकुमार कवि अब भी बच्चों के साथ, पक्षियों की कल्लोल के साथ, पुष्प पल्लवों में सुगन्ध की भाँति विचरता होगा।

प्रस्ताव के शेष दो अंश प्रयास के बाद भी अभी तक पूर्ण नहीं किये जा सके। संत्रस्त एवं विषाक्त राजनीतिज्ञ अपनी ही पीड़ा में कराह रहे हैं, उन्हे वोट बैंक की राजनीति के अतिरिक्त और किसी की सुध नही है। 'कालोह्ययं निरवधीः विपुला च पृथ्वी' की उक्ति के साथ हम आशा कर सकते हैं कि सम्भवतः कोई संस्कारवान् राजनायक होगा जो साहित्यकारों का समादर करेगा। ३१ मई १९७९ के राष्ट्रभाषा सन्देश में 'दृष्टिकोण' शीर्षक से प्रकाशित लेख से मैं पूर्णरूप से सहमत हूँ जिसे उद्धृत कर रहा हूँ—

'कालजयी महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त हिन्दी गगनमण्डल के ऐसे ज्योतिमान नक्षत्र हैं, जिसकी आभा कभी क्षीण होने वाली नहीं, प्रत्युत काल पाकर वह उत्तरोत्तर प्रदीप्त होती रहेगी। अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर की विहार-स्थली हिमालय की उपत्यका में पैदा हुआ यह कवि पूर्णरूप से शिव की साधना में लीन रहा, और कई दशकों तक उसने हिन्दी को अपने शाश्वत स्वरों से स्पन्दित किया।

न्तकाल भारत की प्रचण्डतम राजनीतिक हलचलों का काल रहा है, किन्तु उन पर लेशमात्र भी राजनीति का प्रभाव नहीं पड़ा है। भारत की राजनीति का केन्द्र-स्थल, इलाहाबाद में रहकर भी पन्त जी जिस प्रकार राजनीति से अछूते रहे उसे 'तेहि वन बसत भरत बिनु रागा' तुलसी की इस पंक्ति से ही प्रकट किया जा सकता है।

पन्त जी जिस ऊँचे स्तर के रससिद्ध कवि थे, उससे भी ऊँचे स्तर के वह मनुष्य थे, और इसीलिए यदि महामानव कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उनकी कविताओं में मानव जीवन और प्रकृति के जिन रहस्यों का उद्घाटन हुआ है, उसकी छाप उनके वैयक्तिक जीवन में भी परिलक्षित होती थी। शिव के अवढर-दानी स्वरूप का अनुसरण कराने वाला पन्त का जीवन-वृत्त स्वयं में एक ऐसी कविता है, जिसके गूढ़तम रहस्यों को समझने के लिए युगों तक शोधकार्य होते रहेंगे। माँ शारदा के इस वरदपुत्र ने अपने सम्पूर्ण जीवन को सरस्वती की साधना मे ही समर्पित कर दिया था। उसके इस समर्पण में मानव जीवन को रसमय, ज्योतिर्मय और उन्नत बनाने की गूढ़ कामना निहित है। कवीन्द्र, रवीन्द्र और गाँधी युग का यह कवि दोनों के दर्शन का पुन्जीभूत रूप तो था ही, कुछ और भी था, और यह कुछ शिव का अंश था। सत्यं, शिवम् सुन्दरम् के जिन शाश्वत् तत्वों का साक्षात्कार कवि ने किया है, वह उसकी कविताओं में निरन्तर प्रवहमान् है। हिन्दी के आलोचकों ने कभी उसे रहस्यवादी, छायावादी बताया तो कभी प्रकृति का गायक। वस्तुतः वह सबसे ऊपर था। एक पूर्ण सच्चे कवि को किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। हाँ प्रत्येक को अपनी सीमाओं का दर्शन उसमें अवश्य मिल सकता है।

सांख्य की प्रकृति और उपनिषदों की माया पन्त की कविता में जिस रसमय जगत की सृष्टि करती है, वह मानव जीवन के उदात्त पक्षों का प्रबल पोषण भी करती है और जीवन के उन शाश्वत सत्यों का उद्घाटन करती है, जिसका गान भारतीय संस्कृति का मुख्य स्वर है। सारे विश्व में राष्ट्रवाद की प्रबल आँधी ने जहाँ मानव को अनेक खण्डों में विभक्त कर दिया था वहाँ भारतीय संस्कृति के स्वर को अधिक तीव्र और सरस बनाकर पन्त ने एक ऐसे अखंड मानव-जगत का सृजन अपनी कविताओं में किया, जिसकी कल्पना वेदों से लेकर आज के रवीन्द्र, तुलसी, कबीर आदि भारतीय संस्कृति के अमर गायकों ने की है। पन्त ने प्रकृति और पुरुष के सांख्यगत और औपनिषदिक स्वरूप को युग के साँचे में ढालकर उसे युगवाणी दी, और चारों ओर यान्त्रिक युग की व्याप्त कर्कश ध्वनि के मध्य जीवन का सरस राग प्रसारित किया।

हिन्दी की खड़ी बाली जो अभी अभी कविता के क्षेत्र मे बचपन की चाल से उतरी थी, पन्त की वाणी ने उसे किशोरावस्था का चापल्य ही नहीं, युवावस्था की गरिमा और छवि से भी मण्डित किया।"

निश्चय ही पन्त ने खड़ी बोली में कविता को प्रतिष्ठित किया और अपने स्नेह-सौजन्य से नये रचनाकारों की ऐसी सशक्त पंक्ति खड़ी की है, जो शाश्वत नए मूल्यों से भारतीय संस्कृति का उद्गान करती रहेगी और उनके यश को अक्षुण्ण रक्खेगी।

कृतियाँ

पन्त जी के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उनकी कृति और आकृति मे कोई अन्तर विशेष नहीं था। सत्यं, शिवम् सुन्दरम् के स्वरूप से सत्‌चित् आनन्द का निर्झर निस्सृत हुआ, जो शुष्क मानस में भी रस की फुहार भर गया। उन्होंने भाषा को संस्कार, काव्य को रससिक्त-भाव, समाज को स्नेह और विश्व को कल्याण-सन्देश दिया। उन्होंने हिमालय की स्रोतस्विनी को प्रयाग में त्रिवेणी का स्वरूप दिया, जिसके शीतल स्पर्श से वाणी का गीत हंस, नवस्फुरित, कल निनादित ध्वनि बिखेर सका।

उनके वाङ्मय की प्रकाशित काव्य-कृतियाँ निम्मांकित हैं—

	काव्य-कृतियाँ	वर्ष
१.	वीणा	१६१६
२.	ग्रन्थि	१६२०
३.	उच्छ्वास	१६२२
४.	पल्लव	१६२६
५.	वीणा ग्रन्थि	१६३०
६.	गुञ्जन	१६३२
७.	युगान्त	१६३७
८.	युगवाणी	१६३८
६.	पल्लविनी	१६४०
१०.	ग्राम्या	१६४०
११.	स्वर्ण किरण	१६४७
१२.	स्वर्णधूलि	१६४७
१३.	युगान्तर	१६४८
१४.	उत्तरा	१६४६
१५.	युगपथ	१६४६
१६.	आधुनिक कवि-२	१६४६
१७	अतिमा	१६५५
१८	वाणी	१६५८

१९. रश्मिबन्ध १९५८
२०. चिदम्बरा १९५८
२१. कला और बूढ़ा चाँद १९५९
२२. अभिषेकिता १९६०
२३. हरी बाँसुरी सुनहरे टेर १९६३
२४. लोकायतन (महाकाव्य) १९६४
२५. किरणवीणा १९६६
२६. पौ फटने से पहले १९६७
२७. पतझर १९६८
२८. गीतहँस १९६९

पद्यनाट्य-कृतियाँ—

३०. ज्योत्स्ना १९३४
३०. रजतशिखर १९५१
३१. शिल्पी १९५२
३२. सौवर्ण १९५७

निबन्ध संग्रह—

३३. गद्य-पथ १९५५
३४. शिल्प और दर्शन १९५८
३५. कला और संस्कृति १९६५

कहानी संग्रह—

३६. पाँच कहानियाँ १९३६

उपन्यास—

३७. हार (लिखित १९१५) १९६०

आत्मकथात्मक संस्मरण—

३८. साठ वर्ष एक रेखाकन १९६३

काव्यानुवाद—

३९. मधुज्वाल (रूबाइयाते उमर खैय्याम) १९४७

प्रकाशित कृतियों के अतिरिक्त पन्त जी की अनेक अप्रकाशित रचनाएँ हैं, और कुछ विनष्ट भी हो गई हैं। महासागर की तरंगों के समान उनका मानस भी काव्य की नई स्फुरणाओं एवं चेतनाओं से निरन्तर झंकृत होता रहता था और उनकी लेखनी वाग्देवी को नित्य नवल नैवेद्य निवेदित करती रहती थी।

२१ मई १९७८, 'अमृत प्रभात' में प्रकाशित अपने श्रद्धालेख में डॉ० जगदीश गुप्त ने लिखा है कि,

"२८ दिसम्बर १९७७ को उनका देहावसान हुआ, और उसी दिन लिखी गई उनकी यह कविता उनके द्वारा देखे गये मानवता के स्वर्गोपम स्वप्न की तरह अधूरी ही रह गयी। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ हैं—

अभी तो शंका है, भय है
यौवन निर्दय है।'

और इसके बाद लेखनी थक कर गिर गयी होगी। इसी तरह एक और अंतिम कविता पन्त जी ने लिखी जो मानव जीवन के संत्रास को व्यक्त करती हुई श्मशान भूमि की कल्पना तक ले जाती है—

कुण्ठाएँ कुण्ठाएँ
काली कलूटी कुंठाएँ
मैं सिर के बल क्यों न चलूँ
हाँथों से पाँवों का काम क्यों न लूँ
कहाँ है हाँथों के लिए काम
पैरों के लिए चलने की भूमि।
मैं आकांक्षाओं के मरुस्थल में खो गया हूँ
भूख-प्यास के मरुस्थल में,
मुझे चारों ओर रेगिस्तान ही
रेगिस्तान दीखता है
केवल बालू का भयंकर प्रसार।
यह अभावों का समुद्र है
जहाँ रोज नये आँधी तूफान
नयी तृष्णाओं के ज्वार उठते है
में श्मशान में क्यों न रहूँ
जहाँ सब अभाव जल जाते हैं
सुखभोग के स्वप्न पछताते है
जलकर राख बन जाते हैं।"

स्वप्नदर्शी महाकवि ने इन पंक्तियों में जो व्यथा व्यक्त की है, वह आज के संत्रस्तयुग का सत्य है। आज न हाथों के लिए काम है और न पैरों के लिए जमीन। ऐटमी और परमाणु युग में यह भूमि रेगिस्तान भी बन सकती है। इसीलिए कवि ने श्मशान भूमि की कल्पना की है, जो शिव-शंकर का वास स्थल है, जहाँ प्रलय और सृजन साथ-साथ चलते हैं, जहाँ सुख भोग के स्वप्न पछताते हैं। मनुष्य-

जीवन और लोक कल्याण की दृष्टि से ही लोकायतन का प्रणयन और लोकायतन की स्थापना की कामना वाला महाकवि सदाशिव की तरह जीवन पर्यन्त आशीष ही बिखेरता रहा, भले ही वह किसी के लिये ग्राह्य या अग्राह्य हो।

पन्त जी की बहुआयामी काव्य-यात्रा के सन्दर्भ में डॉ० जगदीशगुप्त ने लिखा है, 'किसी कवि या कलाकार की आस्था कब-कहाँ टूटती और जुड़ती है, इसका लेखा-जोखा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं रख सकता। आलोचक की पहुँच भी उसके अभिव्यक्त रूप तक ही हो सकती है, पर मन के अलक्षित कक्षों में प्रेरणा का कौन सा बीज, क्यों और कैसे अंकुरित हो सकता है, इसका साक्षी रचनाकार कवि होता है, भले ही वह सब प्रश्नों का स्वयं भी उत्तर न दे सके।'

पन्त जी की काव्य-यात्रा इतनी विस्तृत, विचार वैविध्यपरक बहुमुखी तथा अंतर्बाह्य जगत के प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों को अपने में किसी-न-किसी रूप में सहेजने वाली है कि उस पर यों ही कुछ कहने का साहस करना दुस्साहस मात्र होगा।' गुप्त जी के इन्हीं भावों से स्वर मिलते हुए मैं—विश्व चेतना के उस चिरंतन महाकवि के लिए गीता का यह श्लोक—उद्धृत करता हूँ—

'ऊर्ध्वमूलमध: शाखं
अश्वत्थं प्राहुरव्ययम्
छंदांसि व यस्य पर्णानि
यस्तं वेद, स वेदवित्''

'पन्त' समीक्षकों की दृष्टि में

पन्त जी के विशाल काव्यामृत का मंथन भी समीक्षकों ने विविध रूप से किया है, किसी को उनकी कविता में लोक-मंगलकारी साक्षात् सोम-मूर्ति मिली है, तो किसी को कटुतिक्त गरल और किसी ने तो उनके लोकायतन जैसे मंगलकलश का स्पर्श भी नहीं करना चाहा। इसे मैं पन्त के काव्य की व्यापकता ही कह सकता हूँ, जिसने प्रायः सभी समीक्षकों एवं आलोचकों के मन को किसी न किसी प्रकार कुरेदा है। किन्तु कवि भी अपनी कृति का समीक्षक होता है, क्योंकि उसे विश्व-साहित्य में स्पर्धा एवं ईर्ष्याजन्य परिस्थिति का सामना करते हुए अपना स्थान बनाना पड़ता है। अतः वह स्वतः भी पग-पग पर जागरूक रह कर अपनी साहित्य-वेलि की काट छाँट कर उसे युग और मानव-संवेदन की भूमि तक लाने का निरन्तर प्रयास करता है।

आधुनिक कवि भाग २ की भूमिका और पर्यालोचन में पन्त जी ने अपनी अन्तर-चेतना का विस्तृत विश्लेषण करते हुए 'वीणा से लेकर, ग्राम्या' तक की शिवत्व और सुन्दरम् की ओर अग्रसर होती हुई अपनी काव्य-धारा का सम्यक् विवेचन किया है।

'पन्त जी ने प्रकृति के प्रति अपने सहज प्रेम का वर्णन करते हुए कहा है कि 'मैंने मानव स्वभाव का भी सुन्दर पक्ष ही ग्रहण किया है, इसी से मेरा मन वर्तमान समाज की कुरुपताओं से कटकर भावी समाज की कल्पना की ओर प्रभावित हुआ है।

मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें—मानव-ईश्वर
और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुम्हें धरा पर ?

हम अपने प्रति किये गये अत्याचारों को थोथी दार्शनिकता का रूप देकर चुपचाप सहन करना सीख गये हैं।""हमारा विश्वास मनुष्य की संगठित शक्ति से हटकर आकाश कुसुमवत् दैवी शक्ति पर अटक गया है, जिसके फलस्वरूप देश विपत्ति के युगों में पीढ़ीदरपीढ़ी नीचे गिरता गया।

'जग के उर्वर आँगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन,
बरसो लघु-लघु तृण पर हे चिर अव्यय चिरनूतन '

इसी सविशष की कल्पना के सहारे जिसने ज्योत्स्ना को और गुंजन की अप्सरा को जन्म दिया है, मैं पल्लव' से गुंजन' में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि में पदार्पण करते हुए पाता हूँ।···जब तक रूप का विश्व मेरे हृदय को आकर्षित करता रहा, जो कि एक किशोर प्रवृत्ति है, मेरी रचनाओं मे ऐन्द्रिक चित्रणों की कमी नही रही।····गुंजन और ज्योत्स्ना में मेरी सौन्दर्य कल्पना क्रमशः आत्म-कल्याण और विश्व-मंगल की भावना को अभिव्यक्त करने के लिए उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है।

कला के सम्बन्ध में उन्होने कहा है कि, 'कला के लिए कला' कहना निरर्थक है। कला का विकास जीवन-मंगल के लिए उपयोगी होना चाहिए। इस ह्रास और विश्लेषण के युग के स्वल्पप्राण लेखक की सृजनशील कल्पना अधिकतर नवीन मानों की खोज में ही व्यय हो जाती है, और उसका कलाकार स्वतः पीछे पड जाता है।'····जब कला को हम जीवन की अनुवर्तिनी मानते हैं, तब कला का पक्ष गौड हो जाता है। विकास के युग में जीवन कला का अनुगामी होता है।' छायावाद के सम्बन्ध में उनका मत है कि 'छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास, भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नही था। वह काव्य न रहकर केवल अलकृत संगीत बन गया।' अतः ग्राम्या में वाणी के लिए उन्होंने कहा—

'तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए, तुम्हें क्या अलंकार'

काव्य के अंतरंग पर प्रकाश डालते हुए पन्त जी कहते है कि 'जीवन का सम्यक् विकास' भौतिकता और आध्यात्मिकता के समुचित समन्वय की अपेक्षा रखता है, 'ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्म-दर्शन में मुझे किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पड़ा क्योंकि मैंने दोनों का लोकोत्तर कल्याणकारी सास्कृतिक पक्ष ही ग्रहण किया है।··· मैं अध्यात्म और भौतिक दोनों दर्शनो से प्रभावित हुआ है। पर भारतीय दर्शन की सामन्तकालीन परिस्थितियों के कारण जो एकान्त परिणति, व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है,···और मार्क्स के दर्शन पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण, जो वर्ग-युद्ध और रक्त-क्रांति में परिणति हुई है,' ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नही जान पड़े।·· एक जीवन के सत्य के ऊर्ध्वतल पर देखता है दूसरा समतल पर। भौतिक-दर्शन 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सत्य को सामाजिक वास्तविकता में परिणत करने योग्य समाजवादी विधान का जन्मदाता है।

····जीवन की जिस पूर्णता के आदर्श को मनुष्य आज तक जिस अन्तर्जगत मे स्थापित किये हुए था, अब उसे एक सर्वांगीण तन्त्र के रूप में वह बहिर्गत मे

स्थापित करना चाहता है ।……यदि इस विज्ञान के युग में मनुष्य अपनी बुद्धि के प्रकाश और हृदय की मधुरिमा से, अपने लिए पृथ्वी पर स्वर्ग का निर्माण नहीं कर सकता तो यह कहीं अच्छा है कि इस दैन्य-जर्जर, अभाव ज्वर पीड़ित, जाति-वर्ग में विभाजित, रक्त की प्यासी मनुष्य जाति का अन्त हो जाय। … किन्तु जिस जीवन-शक्ति की महिमा युग-युग से दार्शनिक और कवि गाते आये हैं…वह सर्वमयी-शक्ति केवल पृथ्वी के गौरव मानव जाति के विश्व को ही इस प्रकार जीता-जागता नरक बनाये रहेगी, इस पर किसी तरह विश्वास नही होता। आधुनिक भौतिकवाद का विषय ऐतिहासिक (सापेक्ष) वस्तु चेतना है और अध्यात्म का विषय (निरपेक्ष) चेतना। दोनों ही एक दूसरे के अध्ययन और ग्रहण करने में सहायक होते हैं, और ज्ञान के सर्वांगीण समन्वय के लिए प्रेरणा देते हैं।'

'पन्त जी' उत्कर्ष के कवि है। कविता उनके सहज अनुभूति की स्रोतस्विनी है, जो स्वतः निर्झरिणी सी प्रवाहित होती है। उनके अनुसार 'कविता न सोचकर लिखी जाती है, और न कलम पकड़कर। वह तो बस अपने आप ही प्रवाहित होने लगती है।' पन्त जी की 'स्वर्ण किरण' लिखने की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए श्री अमृत लाल नागर ने लिखा है, 'उन दिनो वे प्रायः बड़े खोये हुए रहते थे। उनके उदास चेहरे पर कान्ति विराजती थी। एक दिन बँगले के लान में बाँह पर हाथ रखे, मौन टहलते, टहलते, वे सहसा खड़े होकर सामने वाले वृक्ष को सिर उठाकर देखने लगे। पत्तों के हेर-फेर में उनकी खोई आँखों में चमक बढ़ने लगी। मेरी बाँह पर उनके पंजे का उल्लास भरा दबाव बढ़ा, उमंग से बोले 'सामने देखिये बँधु, कविताएँ, झर, झर, झर रही हैं, यह स्वर्ण-किरण और स्वर्ण-धूलि थीं। ये रचनाएँ मद्रास एवं बम्बई में १९४६-४७ में लिखी गईं।

स्वर्ण-धूलि की प्रणय सम्बन्धी रचनाओं के लिए बच्चन जी का कहना है कि, 'सन् १९४० से मेरे ऊपर गृहस्थी का भार छोड़कर पन्त, प्रणय-गीत 'बाँध दिये क्यों प्राण प्राणों से 'बज पायल छम-छम, शरद चाँदनी, रसबन' आदि लिखने में लीन हो गये।' दोनों ही संकलनों की रचनाएँ, मानवतावादी अध्यात्मवादी तथा विकसित सांस्कृतिक चेतना से ओत-प्रोत हैं। चिन्तन, मनन तथा अनुभूति ने उनको आन्तरिक और बाह्य दोनों ही पक्षों के प्रति प्रबुद्ध कर दिया था। स्वतन्त्रता-संग्राम, विश्व-युद्ध, गाँधी के तपः पूत व्यक्तित्व तथा महान वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रभावों के साथ, वेदों, उपनिषदों के अध्ययन, मनन, चिन्तन ने उनका उस सत्य से साक्षात्कार करा दिया, जिसके पैर, धरती पर हैं, हृदय सौन्दर्य पूर्ण ऊर्ध्वमुखी स्वर्गिक क्षितिजों में- तथा मन बौद्धिक शिखरों के पार शाश्वत आनन्द स्पर्श से प्ररित है

स्वर्ण-धूलि' और 'स्वर्ण-किरण' की समीक्षा में संगम के प्रथम अंक में श्री इलाचन्द जोशी ने लिखा है, 'अपनी दो नवीनतम कृतियों (स्वर्ण-किरण और स्वर्ण-धूलि' में पन्त जी ने वास्तव में एक ऐसे सुन्दर, स्वास्थ्यकर, और सामंजस्य-पूर्ण जीवनादर्श की ओर अपनी मर्मकर्षिणी प्रतिभा को प्रेरित किया है जो जितनी ही विराट है, उतनी ही गहन भी, जितनी ही नवीन है, उतनी ही पुरातन भी।.... इस असाधारण कला में पन्त जी असाधरण ही रूप से सफल हुए हैं। इसमें मुझे तनिक भी सन्देह का अनुभव नहीं होता।'

'स्वर्ण धूलि में संकलित कविताओं द्वारा कवि की ऊर्ध्वमुखी अन्तश्चेतना का वर्णन मिलता है,

मनुष्य को ईश्वर की ओर प्रेरित करते हुए कवि ने कुंठित मनुष्य के लिए कहा है कि उसे जीवन में प्रभु की सत्ता को स्वीकारना चाहिए। ईश्वर की प्रभु-सत्ता ही कण-कण में व्याप्त है और ईश्वर की एकात्मक अनुभूति से मानव मन का बिखराव संश्लिष्ट होकर लोक-कल्याण की ओर उन्मुख होता है। इसी लोक कल्याण में मनुष्य का आत्म-सुख भी निहित है।

'तुम्हें नहीं देता यदि अब सुख
चन्द्रमुखी का मधुर चन्द्रमुख
रोग-जरा-भय-मृत्यु देह में—
जीवन-चिन्तन देता यदि-दुख
आओ प्रभु के द्वार।
सम्भव है तुम मन से कुण्ठित
सम्भव है तुम जग से कुण्ठित
तुम्हें लौह से स्वर्ण बना प्रभु
जग के प्रति कर देंगे जीवित
आओ प्रभु के द्वार।

कभी-कभी किसी वस्तु या जीव में अतिशय तल्लीनता के कारण हृदय की अन्त-र्ध्वनियाँ उसी के शब्दों और रूपों से प्रतिबिम्बित और झंकृत होने लगती हैं। रचना काल के समय वही ध्वनियाँ शब्दों के माध्यम से काव्य में उतर आती हैं भले ही वे ध्वनियाँ उस पात्र या चरित्र के अनुरूप न हों जिसके लिए कही गई हैं। ऐसी ही कुछ बात पन्त जी के साथ भी उनके काव्य में हुई है। सम्भव है इसकी ओर आलोचकों का ध्यान भी न गया हो—

स्वर्ण-धूलि में संकलित 'सावन' शीर्षक की कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

'ऐसे पागल बादल बरसे नहीं धरा पर
जल-फुहार बौछारें, धारे गिरतीं झर-झर
आँधी-हर-हर करती, दल मर्मर तरु चर-चर
रजनी दिन के पाख बिना, तारे शशि दिनकर
नाच रहे पागल हो ताली दे, दे चल-दल
झूम-झूम सिर नीम हिलातीं सुख से विह्वल।
हरसिंगार झरते, बेला कलि बढ़ती पल-पल
हँसमुख हरियाली में खग-कुल गाते मंगल
दादुर-टरटर करते, झिल्ली बजती झन-झन
म्याऊँ म्याऊँ रे मोर पीउ-पिउ चातक के गण
उड़ते सोन-बलाक आर्द्र-सुख से कर क्रन्दन
उमड़-घुमड़ घिर मेघ गगन में भरते गर्जन'

जहाँ पर जल धाराओं का झर-झर', आँधी की हर-हर' और तरु पत्रों के चरचर की शब्द ध्वनियाँ है वे, पूर्णतया सावन के उन चित्रों का स्मरण करा देती है, किन्तु दादुर की टरटर और झिल्ली की 'झन-झन' के साथ, मोर का म्याऊँ, म्याउ' खटकता है। मोर की ध्वनि तो 'म्याऊँ म्याऊँ, की नहीं होती, किन्तु पन्त जी लिख गये। शायद इसका एक मात्र कारण पन्त जी की 'राजू बिल्ले' मे अतिशय तल्लीनता हो सकती है, जिसे वह वत्सवत् प्यार करते थे, और रात-रात भर उठकर, जिसकी प्रतीक्षा करते थे। यह भी हो सकता है, कि जब पन्त जी यह कविता लिख रहे थे तो राजू बिल्ला पेड़ पर चढ़ गया हो और वहाँ मोर भी रहा हो। बिल्ले की 'म्याऊँ-म्याऊँ से मोर शब्द करते हुए उड़ा हो, और मोर की फड़-फड़ाहट के साथ बिल्ले का स्वर पन्त की कविता में उतर आया हो। काश आज पन्त जी होते और मैं उनसे मनोविनोद में पूछता जैसा कुँवर सुरेश सिंह ने एक बार उनसे पूछा था।

'नौका विहार' कविता लिखने के बाद पन्त जी उसे सुना रहे थे, उसी समय 'सुरेशसिंह जी भी वहाँ थे उन्होंने 'पन्त जी' की इस पंक्ति पर उन्हें टोका—

'लो पालें बँधी खुला लंगर'

कुँवर साहब ने कहा पन्त जी 'पालें बँधने पर तो वह निष्क्रिय रहती हैं, और उनमे हवा ही नहीं भरती और लंगर को खोल देने से नाव तो जरूर धारा में बहने लगेगी किन्तु लंगर तो किनारे पर ही छूट जाएँगे। इसीलिए माँझी लोग हवा चलने पर पाल खोलने की बात करते हैं और नाव चलने पर लंगर उठाने की बात।' उस समय 'गुंजन' प्रकाशित हो गया था, फिर भी पन्त जी ने उसे संशोधित करते हुए कहा अगले संस्करण में इस प्रकार कर दूँगा—

लो पालें खुली उठा लगर

इसी प्रकार पन्त जी ने 'उच्छ्वास' नामक एक कविता में लिखा था—

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की।
बाह्य प्रकृति बनी चकाचक चित्र थी॥

'चकाचक' शब्द पर कुँवर सुरेश सिंह ने कहा कि 'पन्त जी' चकाचक शब्द तो मथुरा के पण्डों की भाषा में खूब 'चकाचक' भोजन करने के अर्थ में आता है। पन्त जी मुस्कराए और 'चकाचक' शब्द के स्थान पर पल्लविनी के प्रकाशन के समय चमत्कृत' शब्द कर दिया और कुँवर साहब को दिखाया।

सन्दर्भ (पन्त जी और काला कॉकर पृष्ठ—३८-३९)

सन्त और सरल स्वभाव के, पन्तजी, रसानुभूति और आत्मचिंतन में इतने तन्मय रहते थे कि कभी-कभी उन्हें छोटी-छोटी चीजें भूल सी जाती थी, किन्तु वह सहजता से उचित आपत्तियों को स्वीकार कर उनका परिहार भी कर देते थे।

श्री दिनकर जी के अनुसार 'अरविन्द दर्शन की एक सूक्ति को अंगीकृत करके पन्त जी ने युगवाणी की भूमिका में कहा है, कि, 'पदार्थ (मैटर) और चेतना (स्पिरिट) को मैंने दो किनारों की तरह माना है, जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित होता है', इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए दिनकर जी कहते हैं वे मैटर के गुणों पर मुग्ध थे, किन्तु आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखने के कारण भूत उन्हें सर्वतोभावेन ग्राह्य नहीं था। अरविंद दर्शन ने उन्हें बताया कि भौतिक गुण भी बिल्कुल त्याज्य नहीं, एक सीमा तक ग्राह्य हैं, बशर्ते कि इन गुणों के विकास से आत्मा के उत्थान में कुछ बाधा न पड़ती हो। 'स्वर्णकिरण' की कुछ रचनाओं के प्रति दिनकर जी की आपत्ति है कि, 'शृंगार के रंग में डूबे हुए इन चित्रों पर शुद्ध साहित्य की दृष्टि से कोई बड़ी आपत्ति नहीं की जा सकती। जहाँ तक शील का प्रश्न है, उसका भी इतना भर उल्लंघन प्रायः कवि करते आए है। शंका मेरी यह है कि आध्यात्मिक प्रसंगों में नारी रूप और काम भावना का ऐसा वर्णन किया जाना ठीक है या नहीं' श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की इस शंका का उत्तर देते हुए पन्त ने लिखा है कि, 'स्वर्णकिरण और उत्तरा' में कहीं-कहीं दीप्त-लावण्य के स्थल आए हैं, जिनसे मेरे कुछ मित्रों तथा आलोचकों को आपत्ति है। विशेषतः इसलिए की उसकी संगति मेरे आध्यात्मिक काव्य के साथ नहीं बैठती। कवि-दृष्टि निर्वैयक्तिक होती है। वह स्त्री सौन्दर्य को उपभोग के गुंठन में सुरक्षित रखने के बदले, उसे व्यापक, आनन्द के लिए वितरित कर देती है। यह आदि कवि वाल्मीकि-काल से प्रचलित व्यास-कालिदास की परम्परा है, जिसके गवाक्ष से स्त्री सौन्दर्य पर मधुर प्रखर भावोष्ण प्रकाश पड़ता रहा है! स्त्री की

शोभा पृथ्वी पर कला की पीठिका है, और उसका शील, सदाचार अध्यात्म का द्वार। आने वाली संस्कृति के धरातल पर नारी सौन्दर्य मानवजीवन के उन्नयन में बाधक न होकर सहायक ही होगा।""""यह मात्र नैतिक मध्ययुगीन दृष्टिकोण है जो स्त्री सम्पर्क को आध्यात्मिकता का विरोधी मानता है। पिछली आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की धारणा ही, खोखली तथा एकांगी रही है, जिसे स्त्री स्पर्श तथा सम्पर्क उन्नत करने के बदले कलुषित कर सका है। निश्चय ही वह जीवनोन्मुख अध्यात्म न होकर रिक्त-जीवन-विरक्त तथा अप्राकृतिक अध्यात्म रहा है, जिसका दूसरा छोर हमारा वाममार्गी वज्रयानी साधनापथ तथा पण्डों, पुरोहितों और महन्तों का धार्मिक जीवन रहा है।

आध्यात्मिकता के स्तर पर नारी और पुरुष का स्तर मांसल न होकर अलौकिक हो जाता है। प्रकृति और पुरुष का प्रतीक संसार की सृष्टि और कल्याण के लिए आवश्यक है। प्रकृति-पुरुष के अन्तः सम्बन्धों से जो रस-निष्पत्ति होती है वह मानवमन को भी उद्वेलित करती है। 'पन्त' का अकलुप मन, मानवीय दुर्बल राग-रंजिता से असम्पृक्त औपनिषदिक सत्य का दर्शन करता है, जहाँ पर ऐसी शंकायें निर्मूल हो जाती हैं।

'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में 'पन्त' ने औपनिषदिक दर्शन को अपनी काव्य-भाषा में लोकग्राह्य बनाया है। इस सम्बन्ध में पन्त जी ने कहा है कि, 'मेरे भावबोध ने उन मन्त्रों को जिस प्रकार ग्रहण किया है, वही उनका मुख्य तत्त्व और तर्क है, कहीं-कहीं तो मैंने उन मन्त्रों की व्याख्या कर दी है।' स्वर्णधूलि की प्रारम्भिक चौदह कविताएँ तो ऋग्वेद के सूक्तों की भावानुवाद सी हैं। पन्त जी के स्वर्ण-काव्य में सविता, अथवा पूषण, आत्म-तेज के प्रतीक हैं, 'हरीतिमा' जीवन की, प्राण शक्ति की, नीलधार एवं यमुना विश्वचेतना, एवं मातृरिश्वा, मातृदेवो की प्रतीक हैं।

मुक्त चेतना के प्लावन सा
उमड़ रहा रजतातप निर्झर
आज सत्य की वेला बहती
स्वप्नों के पुलिनों के ऊपर'

रजतातप (आत्म-प्रकाश) का निर्झर उमड़ कर लोक चेतना के स्वप्न को सत्य कर दे। लोक मंगल के लिये वैदिक वाङ्मय का साक्षात् कराना पन्त सदृश सन्त कवि के लिए ही सम्भव था, क्योंकि यथार्थवादी चोट से अकुलाये अन्य रचनाकार कवि, वैदिक ऋचाओं की वह पवित्रतम संगति बनाने में न तो सक्षम थे और न उनकी दृष्टि में यह आवश्यक था। भारतीय आत्मा के मूल को अधुनातन प्रसगो मे जोड़ने का काम पन्त सदृश मनीषी कवि के लिए ही सम्भव था।

स्वर्गिक चेतना धरातल पर उतर कर पुलकित हो उठती है, वह क्षण-क्षण अद्भुत आनन्द का संचार करती है।

स्वर्ग विभा रज-तन को छूकर
खिलती सकुचाती क्षण-क्षण पर

प्रकृति और दिव्य चेतना का मिलन सम्पूर्ण विश्व में अकल्पित उत्स का प्रचार कर रहा है मनुष्य को अपने दैन्य जर्जर विचारों और क्षुद्रताओं को त्याग कर इस आनन्द उत्स में सम्मार्जन करना चाहिए—

'ज्योति नीड़ के विहग जगे, गाते नव जीवन मंगल
रजत घण्टियाँ बजीं अनिल में, ताली देते तरुवर'

पन्त जी की व्यापकता की चर्चा करते हुये एक समीक्षक ने कहा है कि —'पन्त जी' की रचना निश्चित रूप से श्रेष्ठतम है। एक तो इसलिये कि उनका विषय 'तुलसी' और 'वर्ड्सवर्थ' दोनों से व्यापक है, और दूसरे इसलिए भी कि उनका जीवनदर्शन अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर, सहज-ग्राह्य और सरस है। 'तुलसी' का उद्देश्य' (विनय-पत्रिका) तो जीवन के प्रति विरक्ति उत्पन्न करती है। वर्ड्सवर्थ का उद्देश्य अपनी खोई हुई वृत्ति को फिर प्राप्त करना है (आवरवर्थ इज ए स्लीप ऐन्ड ए फारगेटिंग) ····परन्तु पन्त जी की चिन्तनधारा ने जन्म, बचपन, किशोरावस्था, जरा और मरण पर समान रूप से प्रकाश डाला है, और यह अत्यन्त विदग्धता से सिद्ध किया है, कि जीवन की सभी अवस्थाएँ आवश्यक और उपयोगी हैं।

डा० देवराज के अनुसार स्वर्णधूलि की कविताओं में अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'पन्त जी' अपने विकास की चरम भूमिका पर पहुँच चुके हैं, तत्सम् शब्द प्रधान हिन्दी भाषा पर हमारी सम्मति में उनका 'प्रसाद' से अधिक दृढ़ अधिकार है। अभिव्यक्ति के एक धरातल का जितना सफल निर्वाह पन्त कर सकते हैं, वैसा 'प्रसाद' नहीं। इसकी परीक्षा के लिए आप 'स्वर्णधूलि' की प्रथम कविता लें और 'कामायनी की एक जगह से उठाये हुए किन्हीं भी आठ पद्यों से उनकी तुलना कर लें।

स्वर्ण किरण और 'स्वर्ण धूलि' की कविताएँ पन्त के पवित्र एवं परिपक्व विचारों को संजोए हैं। वे जीवन की व्यापकता और चेतना की एकता का आनन्द बिखेरती है। इनमें वीणाकालीन चपलता और रहस्यमयता नहीं है, और न पल्लव की तरह सौन्दर्य और रूपमाधुरी-पान 'न' गुंजन का विप्लवकारी स्वर है वरन उनमें मानव-चेतना को जगाने की झंकार है। 'स्वर्णकिरण' और स्वर्णधूलि में ज्योत्स्ना-कालीन मानव-चेतना का स्वर अधिक मुखर है।

युग परिवर्तन के साथ पन्त जी की कविता में प्रगतिशील विचारधारा का प्रवेश भी हुआ किन्तु उनकी कविता मार्क्सवाद के उन सिद्धांतों से सहमत नहीं है जिसके द्वारा रक्तमयी क्रान्ति से समता लाने की बात कही गई है।

प्रगतिशील आलोचक प्रकाश चन्द्र गुप्त के अनुसार, प्रेमचन्द के बाद श्री सुमित्रानन्दन पन्त का नाम इस सम्बन्ध (प्रगतिशील लेखक संघ) में उल्लेखनीय है। सामाजिक व्यथा के प्रति पन्त सचेत थे, जो उनकी परिवर्तन आदि कविताओ से विदित होता है। प्रगतिशील विचारधारा से नाता जोड़कर पन्त जी ने अधिक वैज्ञानिक दृष्टि विकसित की। युगवाणी और ग्राम्या में श्री सुमित्रानन्दन की कविता का विकास एकदम नए ढंग से हुआ है। आधुनिक हिन्दी काव्य-साहित्य में यह विकास बेजोड़ है। 'पन्त' ने रहस्यवाद-छायावाद की श्रृंखलाएँ तोड़ दी हैं और वे कदाचित् उन्हें फिर कभी धारण नहीं कर सकेंगे, क्योंकि आज उनका मन सचेत है। रहा भाषा का प्रश्न जन-मन के भावों के गीतयान बनाने के लिए उन्हें सुबोध भाषा का विकास करना अपेक्षित है।''

मुक्ति बोध के अनुसार'''पन्तजी मार्क्सवाद के प्रति बौद्धिक रूप से आकृष्ट नही हुए। भौतिक जीवन का पक्ष मार्क्सवाद द्वारा और अन्तर्जीवन का पक्ष, उच्च नैतिक आध्यात्मिक गुणों द्वारा, आध्यात्मवाद द्वारा, निष्कण्टक और समृद्ध होगा। ऐसा उनका विश्वास रहा आया। पन्तजी का अध्यात्मवाद वस्तुत: आध्यात्मिक गुण सम्पन्नतावाद है, उच्च मानवीय गुण सम्पन्नातावाद है। वह बौद्धिक दार्शनिक ज्ञान व्यवस्था का कोई शिकंजा नहीं। उनका मार्क्सवाद जनगण के प्रति उनकी सह अनुभूति का ही वास्तुवादी विस्तार है।''

पन्तजी के मार्क्सवादी विचारों के सम्बन्ध में श्री पूरनचन्द जोशी ने लिखा है कि ''सुमित्रानन्दन पन्त ने समाजवादी विचारों को भारतीय आदर्शवादी दर्शन के साथ संयोजित करने का कार्य किया और मैंने मार्क्स-लेलिनवाद के वैज्ञानिक समाजवादी विचारों का भारतीय वास्तविकता के अनुरूप प्रयोग करने का कार्य किया। मै मानता हूँ वह मुझसे अधिक सफल रहे हैं किन्तु हमारी भ्रातृत्त्वपूर्ण प्रतियोगिता अभी समाप्त नहीं हुई है।

पहाड़ी जी का कहना है कि, पन्त जी का यह गुण है कि वे राजनीति से अधिक मानवता पर विश्वास करते हैं। पन्तजी प्रगतिकामी रहे हैं जन-कल्याण एव मानवतावादी रहे हैं। इसी अर्थ में वे प्रगतिशील है न कि मार्क्सवादी अर्थ में, अपना इसी विचारधारा के कारण पन्तजी ने कम्युनिस्ट पार्टी के सांस्कृतिक मंच प्रगतिशील लेखक संघ से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। यह सम्बन्ध विच्छेद, स्पष्टतया संकुचित प्रगतिवाद एवं कुत्सित समाजवाद पर एक करारा प्रहार था जिसे तत्कालीन कम्युनिस्ट पार्टी रणदिवे दल के सदस्य सह नहीं सके और वे पन्तजी के कटु आलोचक बन गए। सन् १९४७-४८ मे इस दल के सदस्यों ने प्रगतिशील विचार-क्रान्ति की घोषणा कर दी और अप्रत्यक्ष रूप से 'पन्त जी' को नीचा दिखाने के लिए ' निराला जी को उछालने लगे। प्रगतिशील लेखकों को 'पन्त' के अभाव में एक

महादेव की आवश्यकता थी जो इन्हे 'निराला के रूप मे मिल गया। प्रगतिवादी मानते थे कि निराला जी ने जो लिखा वह सब प्रगतिशील था, और जो लिखेंगे वह प्रगतिशील होगा किन्तु महाकवि निराला बमभोले के समान सर्वदा उतार-चढाव की राजनीति से असम्पृक्त थे। उन्हें तो पन्त जी का प्रगतिशील आन्दोलन के साथ जाना भी नापसन्द था। उनका विचार था कि वेदान्त की भूमि से जनता की जो सेवा की जा सकती है, जैसा क्रान्तिकारी साहित्य रचा जा सकता है वैसा अन्य किसी दर्शन की भूमि मे नहीं। निराला जी से जब "प्राग्रेसिव कविता की चर्चा की जाती तो अपने निरालेपन के अनुसार वह कहते, कि प्राग्रेसिब तुम लोग बनो मैं तो ऐग्रिसिव हूँ।" इसका सबूत उनकी कुकुरमुत्ता शीर्षक कविता है। साम्यवादी विचारधारा के आलोचकों का पन्त पर आरोप अधिक दिनो तक नही चल सका और समय की करवट के साथ उन्होंने महसूस किया कि पन्त जी के साथ ज्यादती हुई है। वेदान्तिक सिद्धान्तों के पीयूष मे पोषित पन्त का समन्वय-वादी दृष्टिकोण तो समाज को शाश्वत गति और शक्ति प्रदान करता रहेगा किन्तु साम्यवादी विचारधारा का सिद्धान्त तो उनके प्रतिपादक नेताओं की मृत्यु के साथ स्वयं मृतप्राय हो गया और अब तो रूस के विखंडन के साथ उसकी साख और दुर्बल हो गयी।

इस सम्बन्ध में श्री पूरनचन्द जोशी ने लिखा है कि 'पार्टी की उन्मत्त एवं विक्षिप्त वामपंथी रुझान ने पन्त को प्रतिक्रियावादी घोषित कर अपनी मूर्खता, दुरा-ग्रह और मतान्धता को अभिव्यक्ति दी हैं।'

इसी के साथ स्वर मिलाते हुए, श्री शिवदान सिंह चौहान ने अपने निबन्ध 'पन्त काव्य के मूल्यांकन की समस्याएँ" में लिखा है कि 'पन्त जी ने अपने निबन्धों में और कहीं-कहीं कविताओं में भी मार्क्सवाद और भौतिकवाद की कड़ी अलोचना की है, लेकिन वह आलोचना न अकारण है और न अनुचित। इसके विपरीत तथाकथित प्रगतिवादियों ने पन्त जी की जैसी सिद्धान्त-हीन और अनधिकार आलोचनाएँ की हैं, उन्हें पढ़कर सिर शर्म से झुक जाता है। यह एक विचित्र भौतिकवादी दृष्टिकोण है कि हम अपने देश की महानतम् विभूतियों को तो गाली बकते हैं, और बाहर के अधकचरे तुक्कड़ों को कन्धों पर उछालते हैं। मानव-संस्कृति की उपलब्धियों के प्रति यह नकारात्मक ही नही, कृतघ्नता का भी दृष्टिकोण है। पन्त जी ने मार्क्सवाद की जो आलोचना की है, उस पर उद्धतभाव से उनके मुँह लगने की बचकाना हरकत प्रगतिवादी आलोचको को नहीं करनी चाहिए, बल्कि एक युगद्रष्टा विचारक के उन सुचिन्तित शब्दों को आदरपूर्वक और ध्यान से सुनना चाहिए।''''पन्त एक महाकवि हैं यह बात तो पहले ही सर्वमान्य हो चुकी थी'''उनकी हर कविता में जन-मंगल की भावना कवि

के हृदय का सहज और पवित्र उद्गार बनकर ध्वनित हुई, जो एक नए ही चिन्तन-युक्त मंगल-रस की सृष्टि करती है।''

काव्यमयी लोकमंगल भावना को जन-जन तक प्रेषित करने के लिए उन्हे आकाशवाणी से जुड़ने का संयोग मिला। लोकायतन के सांस्कृतिक संदेश को संगीत, स्वर और शब्दों के माध्यम से अन्तस्तल तक पहुँचाने का गौरवमय कार्य उनके काव्य रूपकों ने किया। उनके काव्य रूपकों में हिन्दी भाषा की प्राण-प्रतिष्ठा है जो रसवर्तिनी बनकर श्रोताओं के हृदतंत्री को झंकृत कर देती है।

पन्त जी के श्रव्य काव्य 'रजतशिखर' शिल्पी' और 'सौवर्ण' तीन पुस्तको मे सकलित हैं। 'रजतशिखर' का प्रकाशन १९५१ में हुआ। इसमें मात्राओं का ध्यान रखकर रोला छन्द का प्रयोग किया गया है। सौवर्ण आदि में प्रवाह के अनुरूप छन्द की मात्राएँ घटाबढ़ा दी गई है। इस सम्बन्ध में हरिवंश राय बच्चन जी का मत है कि 'खड़ी बोली को—अन्त्यानुप्रासहीन रोला में इतना ढालने-माँजने का काम इससे पूर्व किसी कवि द्वारा नहीं हुआ था। सीमित क्षेत्र में ही सही इसने वर्णनात्मक और प्रकार के अर्थ में नाटकीय काव्य के लिए रोला की उपयोगिता सिद्ध की। अंग्रेजी काव्य का हिन्दी में अनुवाद करने वाले 'बलैंकवर्स छन्द के जोड के हिन्दी छन्द की तलाश में रोला पर ही आकर अटके। शेक्शपियर, मिल्टन, एसकिलस के अनुवाद अतुकान्त रोला में, इन रूपकों के बाद ही सामने आये और जाने या अनजाने रूप से उनसे प्रेरित या प्रभावित रहे।'

'रजतशिखर' के अन्तर्गत छः काव्य रूपक हैं—'रजतशिखर' 'फूलों का देश,' 'उत्तरशती' 'शुभ्रपुरुष' 'विद्युतवसना' और 'शरदचेतना'। इन सभी रूपको मे जीवन की सम्पूर्णता को स्वीकार करने की भावना का समावेश है। 'रजतशिखर' जीवन की वास्तविकता के यथातथ्य चित्रण के माध्यम से उर्ध्व एवं समसंचरण के समन्वय एवं जीवन को उसकी सम्पूर्णता में अपनाने की अनिवार्यतता प्रदर्शित करता है। फ्रायड एवं मार्क्स के सिद्धान्तों की एकांगिक साम्प्रदायिकता एवं यथार्थवादी सिद्धान्त पर असारता का आरोप लगाते हुए यह रूपक समन्वित जीवन की छटा-पूर्ण श्रव्य प्रस्तुति करता है—

'प्रीति-पाश में बाँधे हम नवमानवता को
जिसका दृढ़ आधार एकता की आत्मा हो
आओ हम अन्तः प्रतीति को धर्म बनाएँ'
आज बहुत ही बड़ा चाँद आया है नभ में।
अन्तर का खुल गया रुपहला हो वातायन'

'फूलों का देश' रूपक सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। आज का युग वादों के संघर्ष से अभिभूत है विशेषकर वह भौतिकवाद एवं आदर्शवाद का गला

अपने हिंसक हाथों से जकड़े है । मनुष्य को मनुष्य बनाने एवं ईश्वरीय संरचना को संरक्षित रखने के लिए उसे आत्म-चेतना से परिपूर्ण होना चाहिए ।

'मैं नवमानवता की प्रतिमा यहाँ गढ़ रहा,
अतर्मन के सूक्ष्म द्रव्य से ।'

कवि का सन्देश है अमृतपुत्र मानव एक दिन प्रकाश पुंज होकर संसार और जीवन को नई दिशा देगा—

'आओ हम दोनों बहिरंतर के प्रतिनिधि मिल
अमृत चेतना को इस फूलों के प्रदेश की
नवयुग जीवन में परिणत कर सत्य बनाएँ ।'

उत्तरशती 'रूपक, विंशशती के संत्रस्त मानव को शान्तिदायिनी सुखद जीवन यात्रा की भूमिका है । 'शुभ्र पुरुष, रूपक महात्मा गाँधी की शुभ्र मूर्ति की काव्यात्मक श्रद्धांजलि है ।

'धन्य मर्त्य के अमरपांथ तुम निखिल धरा को
गूँथ गये नव मनुष्यत्त्व के स्वर्ण सूत्र में ।'

'विद्युन्वसना' एक लघुरूपक स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में लिखा गया है । विद्युत्वसना, में दुर्गा की सृजन और संहार शक्ति का समन्वय है, जो मनुष्य को कल्याण और मुक्ति की ओर प्रेरित करती है—

आज खुल रहे युगयुग के व्रण उमड़ रहाभू का अभ्येतन
अयि जीवनतम् अशने, विद्युत् वसनें'

'शरदचेतना' पंत के प्रकृति प्रेम का सौन्दर्य रूपक है । ऊपर से अवतरित होती शरद् चेतना, मानवमन को विभोर कर लेती है उसे शीतल स्पर्श देकर ऊर्ध्व मुखी बनाती है । अरविन्द दर्शन में इसी को 'डबल लैडर' दूसरी सीढ़ी कहा, जिसे दार्शनिकी शब्दावली में 'मर्कट एवं मार्जार न्याय कहा है । जैसे बन्दर अपने बच्चे को छाती से सदा लगाये रहता है । वैसे ही बिल्ली अपने बच्चे को भूमि से उठा कर उपयुक्त स्थान पर ले जाती है । शारदीय चेतना में भी इसी की प्रतिध्वनि है ।

पन्त जी के काव्य-रूपकों की भाषा हिन्दी भाषा का मानक शृंगार है । भावों की सूक्ष्मता एवं गहनता उनके अतल स्पर्शी मानस का उद्वेलन है । रूपको मे निहित समन्वयकारी युग दृष्टि भविष्य की सुन्दर सोपान वीथी की पूर्वपीठिका है । यथार्थवादी सिद्धान्त और मार्क्सवादी मूर्च्छा के बाद भारतीय दर्शन का समन्वयकारी, श्रेयस एवं प्रेयस दृष्टिकोण महामानव पन्त की स्मृति की सूक्ष्मे तरंगे है जो आकाशवाणी के माध्यम से झंकृत होकर दिग्मंडल में अब भी व्याप्त हैं ।

'शिल्पी' का प्रकाशन काल १९५२ है। इसके अन्तर्गत 'शिल्पी, ध्वंसशेष' और 'अप्सरा' तीन काव्य-रूपक हैं। मनुष्य के संघर्षमय जीवन का दिग्दर्शन कराते हुए इन रूपकों में जीवन की व्यापकता को दृष्टिगतकर समन्वय, आन्तरिक बोध एव एकात्मकता का संदेश निहित है।

'ध्वंसशेष' काव्य की दृष्टि से सफल काव्य-रूपक है धर्म, राजनीति, वर्ग-सघर्ष के ऊपर आधारित दर्शन आदि के ध्वंसावशेष यहाँ चित्रित है।

इसमें विज्ञान की चरमोन्नति की विकृतियों का सफल चित्रण किया गया है। यथार्थवादी दृष्टिकोण, अविवेकशील प्रकृति दोहन, इस यान्त्रिक युग को विनाश के कगार पर भी ले जा सकता है, जैसे—

'प्रलय बलाहक से घिर-घिर कर विश्वक्षितिज में
घुमड़ रहे विद्युत-घोषों के पंख मारकर।
शुभ्र शांति की छद्म-ओट में महाप्रलय का
खर तांडव रच रहे भयंकर अणु दानव को
पाल पोस कर, समर संगठित कर जन-बल को
और भी—
अग्नि प्रलय क्या हाय भस्म कर देगा मनु की
इस सुन्दर मानसी सृष्टि को, जिसे जल-प्रलय
मग्न नहीं कर पाया दुस्तर महा ज्वार में

प्रकृति का यह स्वर और कातर हो उठता है और वह अणुरूपी दानव के प्रति क्रोधित होकर पूछती है—

'किसने जन्म दिया इस दुर्मद अणुदानव को
कौन वज्र की कोख रही वह विश्व-घातिनी?

उसे विश्वास है कि प्रकृति का सौन्दर्य कभी नष्ट नहीं होगा। मनुष्य की चेतना कभी अपने विवेकपूर्ण स्फुरणों से प्रेरित होगी और विनाशशील अणुशक्ति का भी संहार होगा—

'नाश नहीं होता विकास प्रिय अमृत सत्य का
मिथ्या का संहार अवश्यम्भावी है जग में'

वास्तव में पन्त जी के आस्थावान् संदेश ने मनुष्य को प्रेरणा दी और आज इस विभीषिका से त्राण के लिए मनुष्य व्याकुल है। रूस अमेरिका आदि की निरस्त्रीकरण योजना, इसी संदेश और चिन्ता का प्रतिफल है। युगद्रष्टा कवि ने मानव की पीड़ा को अभिव्यक्ति देकर युगचेतना का कार्य किया है।

'सौवर्ण, स्वप्न और सत्य' तथा दिग्विजय' काव्य रूपकों का प्रकाशन काल सन् १९६३ है। हिमालय को मानव जाति के सांस्कृतिक संचय का प्रतीक, मानकर

रचनाकार स्वर्दूत, स्वर्दूती, देव, देवी, कवि, सौवर्ण तथा अन्य पात्रों के स्वरों से विश्वशांति और लोकमंगल की कामना का संदेश देता है। 'सौवर्ण' पन्त जी की गहन अनुभूति, व्यापक दृष्टि, स्वस्थ चिन्तन का प्रतीक होने के साथ ही, उनके अडिग आत्मविश्वास, आशावाद एवं मानव संवेदना का परिपाक है। पन्त जी के अनुसार भारत का पुनर्जागरण ही, विश्वशांति, एवं मानव स्वातंत्र्य का उद्घोषक होगा। अति व्यक्तिवाद, अहंता, संघवाद, पलायन और वैराग्यवादी दृष्टिकोण का परिहार करने के लिए कवि ने 'सौवर्ण' का सृजन किया है। बच्चन जी के अनुसार 'सौवर्ण' न श्री अरविन्द हैं, न 'दि डिवाइन लाइफ' का डिवाइन मैन न कवि स्वयं और न सावित्री का सत्यवान। यह वह औपनिषदिक शाश्वत सत्य है जो विदेह होने पर भी सदेह हो जाता है और धरती का प्रयोजन पूर्ण होने पर पुन अपने चिद-विग्रह में लीन हो जाता है। यह सौवर्ण मानव-कल्याण के लिए नीत्से के अतिमानव शौर्य से युक्त है—

> 'कौन आ रहा वह भीषण सुन्दर भुवनों को
> अपनी दुर्धर पदचापों से कम्पित करता
> झंझा सा जन-मन में भैरव मर्मर रवभर
> भू-समुद्र को हिल्लोलित, भय मंथित करता'

नीत्से का अतिमानव, क्रूर शौर्य, घोर अहंवाद, उच्छृंखल एवं तानाशाही प्रवृत्ति के कारण सभ्यता के अभिशाप स्वरूप दो विश्वयुद्धों का प्रेरक है, किन्तु सौवर्ण का शौर्य 'गीता' का वह विश्व रूप है, जिसे पन्त का वैज्ञानिक वेदान्त विश्व कल्याण एवं जनमंगल हेतु संस्थापित करता है। (कवियों में सौम्य सन्त' पृष्ठ १४६ बच्चन)

गद्य रचना क्रम में पन्त जी के गद्य पथ का प्रकाशन सन् १६५३ में हुआ। इसके प्रथम खण्ड में, वीणा, पल्लव, आधुनिक युगवाणी एवं उत्तरा की प्रस्तावनाएँ एवं भूमिकाएँ हैं। द्वितीय खण्ड में आकाशवाणी से प्रसारित संस्मरण एवं वार्ताएँ है। गद्य-पथ इस दृष्टि से अमूल्य है कि वह पन्त काव्य के अतुलसाहित्यकोष की कुञ्जिका होने के साथ ही आधुनिक साहित्य के प्रति पन्त के दृष्टिकोण की परिचायिका है। पन्त जी का शिल्प और दर्शन तथा गद्य, एक छायावादी कवि का वैज्ञानिक तथा तर्क बुद्धि से संयुत आशावादी अभिव्यक्ति पट है।

रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार, काव्य-सौष्ठव, शिल्प-सौन्दर्य प्रकृति चित्रण तथा भाव गरिमा की दृष्टि से 'अतिमा' का दर्शन अनुभूति जन्य है। भावना की गहराई, और सजीवता विचार जगत को गौण कर देती है—वह हृदय को सहज ही मोहकर मानस की स्वीकृति पा लेती है। पल्लव, ग्राम्या और 'स्वर्ण किरण' की भाँति 'अतिमा' भी अपनी विशेषता रखती है। यह नवीनतम काव्य-शिल्प को अभिव्यक्ति

देती है तथा इसकी कई रचनाएँ विषय की दृष्टि से नई और ताजी हैं। यह पन्त जी की काव्य-यात्रा का चतुर्थ सोपान है। इसी यात्रा का पञ्चम सोपान 'कला और बूढ़ा चाँद' है। पल्लव में प्रकृति तत्व, ग्राम्या में ग्राम्य जीवन, स्वर्ण किरण मे नवीन अध्यात्म, 'अतिमा' में प्रतीक काव्य और शिल्प-वैभव, तथा 'कला और बूढा चाँद' में अनुभूति की स्निग्धता का परम निखार है। 'अतिमा' की कठिनाई और दुरुहता सामान्य पाठक की अपनी कठिनाई है जो कविता को रसगुल्ला समझना चाहता है तथा यह भूल जाता है कि शाश्वत साहित्य व्यापकता और गहनता की सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। यह उच्च भावोन्मेष से तादात्म्य का गुंजन है। इसी अर्थ में 'अतिमा' की अनुभूतियाँ सहज, मर्मस्पर्शी मानवीय और दिव्य है। 'प्रगतिवाद के भौतिक जीवन दर्शन और अरविन्दिक अध्यात्मवाद की स्थूल सूक्ष्म भाव भूमियों को आत्मसात करते हुए पन्त जी निखिल मानवता के प्रति भी आकर्षित हुये हैं। मानव-मंगल, मानव-हित और विश्वमानव की कल्याण-कांक्षा से उनका कवि परिचित हुआ है और उनकी चेतना मानववादी बनी है। युगान्त, युगवाणी, और ग्राम्या में यह मानवतावादी दर्शन भौतिक रहा है। परवर्ती रचनाओ मे उत्तरा तक उसे एक आध्यात्मिक आवरण मिला है वह अन्तर्चेतनावादी हुआ है और 'अतिमा' में उन दोनों परस्पर विरोधाभासी प्रवृत्तियों का समन्वय हुआ है।

पन्त जी ने अपने काव्य के माध्यम से खड़ी बोली का विकास किया और स्पष्ट रूप से खडी बोली का झण्डा उठाकर उसे पूर्ण प्रतिष्ठित किया। यद्यपि उस समय ब्रजभाषा और खड़ी बोली के अलग विरोधी गुट थे और कभी-कभी ब्रजभाषा और खड़ी बोली के उत्साही प्रेमियों में नोक झोंक होकर बोल चाल भी बन्द हो जाती थी। इसी नोक झोंक में रामनरेश त्रिपाठी एवं 'रसाल जी' में ढाई वर्ष तक बोल चाल बन्द रही और मैथिलीशरण गुप्त से तो रसाल जी सात वर्ष तक नहीं बोले, यद्यपि ये सभी एक दूसरे का हार्दिक सम्मान करते थे। निराला जी का बादल राग जब 'मतवाला' में छपा तो लाला भगवानदीन ने कहा, यह तो केचुआ छन्द है। पन्त जी के उच्छ्वास को व्यंग्य में बीसवीं सदी का महाकाव्य कहा गया। खड़ी बोली की आलोचना के प्रसंग में ही निराला जी पर व्यंग्यपूर्ण पंक्तियाँ लिखी गई—

'कल्पना हरामजादी फटके न पास मेरे
पिंगल को पटकि पताल को पठाऊँ मैं
X X X
बँगला के ला के जूठे टुकड़े कमाऊँ नाम
कवि कलिकाल का निराला कहलाऊँ मैं।

और

हिन्दी के आप हिमायती हैं बड़े
आपको मानो सरस्वती ने जना'

किन्तु इस युग तक ब्रजभाषा अपनी पूर्णता को प्राप्त कर वय-सन्धि की ढलान पर जा चुकी थी। युग संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिये उसकी अलंकारिक शैली और रीतिकालीन शृंगार-मंजूषा पर्याप्त नहीं थी। इसी के साथ खड़ी बोली के सशक्त कवियों का आविर्भाव हुआ और ब्रजभाषा में रचना करने वाले, प्रसाद द्विवेदी जी बालकृष्ण राव, सनेही, नाथूराम, हितैषी आदि कवि भी खड़ी बोली की ओर उन्मुख हो गये।

हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए भारतेन्दु जी ने अथक प्रयास किया, और हिन्दी में नागरी अक्षरों की उपयोगिता के माध्यम से देश को नई चेतना और देश-प्रेम का सन्देश दिया। उनकी कविता—

'निजभाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल'

इन्हीं भावुक पंक्तियों से प्रेरणा लेकर पं० मदनमोहन मालवीय ने हिन्दी का नेतृत्त्व किया और उन्हीं की परम्परा में राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन ने इसका सचालन सम्भाला। कालाकांकर से हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक पत्र 'हिन्दोस्थान' मालवीय जी की प्रेरणा से निकला, जिसका सम्पादन भी उन्होंने कुछ दिन किया।

पन्त जी' ने ब्रजभाषा के पक्षधरों का विरोध पल्लव' की भूमिका के माध्यम से किया। वैसे इसके पूर्व ही सन् १९१९ में जब कि रसिक मंडल के कवियों की उपस्थिति के बिना कवि सम्मेलनों को मान्यता नहीं मिलती थी पन्त, न केवल कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे, वरन् जिस कवि सम्मेलन में वह नहीं रहते थे वह सम्मेलन फीका माना जाता था। श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी न 'सरस्वती' के प्रकाशन से खड़ी बोली को स्थापित किया और पन्त ने 'पल्लव' की भूमिका से खड़ी बोली को काव्य के लिए न केवल क्षमताशील बनाया वरन् ब्रजभाषा काव्य के अवसान की घोषणा भी कर दी। इस तरह श्रीधर पाठक एव द्विवेदी जी की साधना में पन्त जी की पल्लव काव्य-धारा पोषित एव परिपुष्ट हुई। श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी युग का प्रारम्भ १९०३ से माना जाता है जिस समय उन्होंने सरस्वती का सम्पादन कर खड़ी बोली के कवियों को नया तेवर दिया।

श्री मैथिली शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सियाराम शरण गुप्त, गोपाल शरण सिंह, गया प्रसाद 'सनेही' अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक,

माखनलाल चतुर्वेदी, मुकुटधर पाण्डेय आदि कवि, द्विवेदी युगीन भावबोध एवं इतिवृत्तात्मक विधा के विशेष कवि थे। द्विवेदी जी के अनुसार गद्य और पद्य की भाषा का पद-विन्यास समान होना चाहिये और भाषा बोल चाल की होनी चाहिये। उनकी इस मान्यता के कारण काव्य की भाषा में स्वछन्द चिन्तन रस प्रवाह संस्पर्शिता का गुण दबने सा लगा इसी दबाव और अकुलाहट के स्वर ने काव्य के सौन्दर्यचेताओं को इतिवृत्तात्मक एवं वर्णनात्मक सीमा से आगे बढ़कर, नये प्रतीकों की उद्‌भावना और उसी के अनुसार लय छन्द एवं पद विन्यास रचने की प्रेरणा दी। स्थूल एवं रूढ़िवादी चिन्तन से मुक्त होने की इस चेतना को कुछ विचारकों एवं आलोचकों ने स्वच्छन्दतावाद या (रोमान्टीसिज्म) का प्रभाव माना। किन्तु स्वच्छन्दतावाद का प्रसूतिस्थल योरोप माना जाता है, जिसका समय अट्ठारहवी सदी का अन्त एवं उन्नीसवीं सदी का उदयकाल है। योरोप का रोमान्टीसिज्म या स्वच्छन्दतावाद तत्कालीन योरोप की आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक परि-स्थितियों के प्रति विद्रोह का स्वर है किन्तु भारतीय छायावादी प्रवृत्ति प्रतिक्रियात्मक या विक्षेपात्मक नहीं है। छायावाद की चेतना मानवीय राष्ट्रीय, एवं सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित भारतीय अध्यात्मवाद से अनुस्यूत है। यह स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद की सीमा से प्रतिबद्ध नहीं है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, यूरोप के पुनर्जागरण के समय मध्ययुग के ईसाई सन्तों की रहस्यवादी साधना ने····· एक अर्ध आध्यात्मिक नीरवता को जन्म दिया, जो भारतीय पुनर्जागरण के समय दिखाई पड़ा। उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा और उस काल के साहित्य से छनकर वह प्रभाव बंगला और हिन्दी साहित्य में आया और दोनों साहित्यों में उसका विरोध भी हुआ।

'स्वच्छन्द घूमते-घूमते मनुष्य अपने लिये सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर ऊबकर उन्हीं बन्धनों को तोड़ने में अपनी शक्ति लगा देता है। छायावाद का प्रादुर्भाव भी मनुष्य की इसी प्रवृत्ति में है।

माहादेवी के अनुसार, 'छायावाद ने मनुष्य के हृदय एवं प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य की प्रकृति अपने दुख में उदास और सुख मे पुलकित जान पड़ती थी।····आज गीत में, हम जिसे नये रहस्यवाद के रूप मे ग्रहण कर रहे हैं····उसने पराविद्या की अपार्थिवता की, वेदान्त के अद्वैतवाद की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली, और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को आलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम

के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।

(महादेवी वर्मा-यामा)

कुछ विद्वानों के अनुसार 'छायावाद रहस्यानुभूतिमयी रति की अभिव्यक्ति है' एवं 'परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में, यही छायावाद है। 'पन्त जी के अनुसार 'छायावाद को पाश्चात्य काव्य तथा बंगला का अवांछनीय अनुकरण मानना ऐतिहासिक दृष्टि के प्रति आँख मूँद लेने के समान है।'' जिन विश्व विकास की शक्तियों से उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अंग्रेजी कवियों को तथा बंगाल में रवीन्द्रनाथ को प्रेरणा मिली, मूल प्रेरणा छायावाद को भी काल का व्यवधान पार करने के बाद उन्हीं विकास के स्रोतों से मिली है। मूल्य की दृष्टि से यह नयी प्रेरणा विश्व चेतना में अवतरित हो चुकी थी।'''हिन्दी में भी तब एक सर्वतोमुखी अन्तर्विकास तथा वहिर्विश्व-क्रान्ति की भावना को अभिव्यक्ति मिलना स्वाभाविक था।

(सुमित्रानन्दन पन्त छायावाद पुनर्मूल्यांकन)

द्विवेदी युग एक व्यापक जागरण का प्रतीक और खड़ी बोली हिन्दी को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने का युग था। राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक उथल-पुथल, रुढ़ि विरोध एवं नारी दुर्दशा के चित्रण से भरपूर यह काव्य-चेतना को मानव-मन के निकट लाने में अग्रणी रहा। द्विवेदी युगीन काव्य-चेतना में अन्त: संगठन का संयम तथा राष्ट्रीय एकता का ओजस्वी आह्वान था, किन्तु उसका भाव-तत्त्व अन्त: सौन्दर्य के रसस्पर्शी उड़ान से वंचित था। छायावाद में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह और सौन्दर्य भाव बोध का आधिक्य था। द्विवेदी युगीन काव्य मूलक की इतिवृत्तात्मक एवं वर्णनात्मक व्याख्या के सम्बन्ध में डॉ० नामवर सिंह ने कहा है कि 'द्विवेदी युग की कविता में नारी के प्रति उस युग में निस्सन्देह विधवाओं पर अनेक कविताएँ लिखी गईं—विधवा विवाह आवश्यक ठहराया गया है। द्विवेदी युग का यह काव्य एक प्रकार से अनाथालय प्रतीत होता है, जिसमें नारी को आश्रय देने के साथ ही बंदिनी भी बना दिया गया है। आर्य समाज की कट्टरबादी (प्युरिटन) शुद्ध नैतिकता ने द्विवेदी के सम्पूर्ण काव्य को नीरसता से भर दिया है।'

पन्त जी का छायावाद इस इतिवृत्तात्मक और वर्णनात्मक धारा से मुक्त एक स्वछन्द शाश्वत सरिण की भाँति है। उनके अनुसार, 'छायावादी प्रेम-काव्य को अतृप्त वासना या दमित काम भावना की अभिव्यक्ति मानना, तथा उसे प्रच्छन्न श्रृंगार मूलक रीतिकालीन काव्य का ही आधुनिक रूप समझना भी आलोचकों की व्यापक दृष्टि के अभाव का द्योतक है।'''छायावादी नारी में भारतीय जागरण

का नैतिक बल ही नहीं, उसमें विश्वमानवी का व्यापक सहानुभूति पूर्ण स्वस्थ स्नेह सवेदन भी है। देह-बोध के परदे से बाहर निकलकर सामाजिक दायित्व के प्रति जाग्रत स्त्री स्वातन्त्र्य के राजपथ पर नए शील के चरण धर कर आगे बढ़ती है। छायावाद का प्रणय निवेदन स्वस्थ-स्वाभाविक राग-भावना का द्योतक प्रेम प्रगीत है। उसमें स्त्री-पुरुषों की सामाजिक उपयोगिता पर आधारित एक नवीन सांस्कृतिक चेतना का आह्वान मिलता है।

(सुमित्रानन्दन पन्त 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृष्ठ २५-२६)

जनवरी १६२२ में उच्छवास के प्रकाशन के साथ द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता तथा छायावादी भावबोध एवं काव्य सौष्ठव का अन्तर स्पष्ट हो गया और इसी के साथ पन्त जी के छायावादी रचना पर प्रहार भी प्रारम्भ हुआ। अलग-अलग खेमे छायावादी कविता की प्रशंसा और आलोचना में उन्मुख हो गये। प्रो० शिवाधार पाण्डेय ने फरवरी १६२२ की सरस्वती में 'उच्छवास' शीर्षक से उच्छवास, पर एक लेख प्रकाशित किया जिसके अनुसार 'यह कवि का पहला प्रकाश है। सरस्वती प्रवेश की चकाचौंध है···कवि ने प्रकृति का क्या परिचय दिया है, प्रभाव प्रकट किया है,। देखो वहाँ इन्द्रजाल ही नहीं, चमत्कार ही नहीं, प्रेम का पुरस्कार ही नहीं पाप का परिहार ही नहीं है। उसकी दृष्टि करुणा के कटोरे के कटोरे पी गई है···क्यों ? करुणाकर ने रोग का उपचार किया है या नही ? उत्तर कवि के पास है। उसकी कविता पढ़ने वालों को उठाती है लुभाती है दूर ले जाती है। भाषा को वह भाव से उंगलियों पर नचाता है। शब्दों को सूँघ-सूँघकर-मनमाना रस चूसता है···। कवि की तोल खरी है। वह 'विकच बचपन कहता है असीम अवसित कहता है····यह हृदय की सुरभित साँस है। इस इक्कीस वर्ष की आनन्दिनी अवस्था का पहला पलाश है। उसके शारीरिक स्वर की मधुरिमा उसमें प्रवेश नहीं कर सकती, किन्तु उसका मानसिक स्वर उसमें कूट-कूट कर भरा है।'

वस्तुतः उच्छवास का प्रकाशन छायावादी काव्य का प्रकाशन था, छायावाद की विजय थी, बृजभाषा, एवं श्रृंगारी एवं इतिवृत्तात्मक काव्य के अवसान की पूर्व सूचना थी। अतः उस समय, महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्याम सुन्दर दास रामचन्द्र शुक्ल पदुमलाल पन्नालाल बक्शी एवं मिश्र बन्धुओं ने भी इसकी, आलोचना की और व्यंग्य किए।

छायावाद के विरोधियों ने पन्त जी के साहित्य पर प्रहार करने के बाद अपनी असफलता के स्वर में पन्त जी की शारीरिक सुन्दरता पर भी प्रहार किया और उन्हें, गौर-क्षीण शरीर, नारी केश-विन्यास, स्त्री सुलभ सुकुमरता वाले कवि की संज्ञा से विभूषित किया। उनकी छायावादी कविता को अस्पष्ट दुरुह, अमूर्त,

लघु लघु प्राण क्लीव स्त्रैण सखि पथी सजनी पथी भी कहा गया किन्तु पन्त ने इन सभी विरोधों का सामना किया। छायावादी कवियों में 'प्रसाद जी' विरोध आलोचना सुनकर चुप हो जाते थे किन्तु पन्त ने पल्लव की भूमिका में रीतिवादियो की आलोचना की और उनके आक्रमण की लपेट में रीति विरोधी कवि भी आ गये। वीणा की भूमिका में उन्होंने रीतिवादियों के अतिरिक्त, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भी तीखी आलोचना की।' पल्लव की भूमिका ने यह सिद्ध कर दिया कि 'जिस लेखनी से यह निकली है उसे पकड़ने वाला न लज्जालु है, न भीरु, न लघु-लघु प्राण, न क्लीव, न स्त्रैण, वह है आत्म-विश्वासी, स्वाभिमानी और वाग्विदग्ध, वह छेड़ को सहलाने वाला ही नहीं, छेड़ने वाला भी है।

बहुधा काव्य के प्रथम चरण में जैसा विरोध नये, कवियों को झेलना पड़ता है, वैसा ही विरोध पन्त जी को भी प्रारम्भ में झेलना पड़ा किन्तु उनकी वाग्धारा, अध्ययन-मनन, शास्त्र, छंद और रस तथा वाङ्मय के पुरातन प्रवाह, संस्कृत के दर्शन से स्निग्ध और ओत-प्रोत थी अतः इस झंझा को सहज ही झेल कर प्रतिष्ठा के पद पर स्थापित हो सकी। पन्त में महाकाव्यत्व के लक्षण का आभास वरिष्ठ कवियों को हो गया था, अतः उन्हें, प्रथम विरोध के बाद आचार्य महावीर प्रसाद, द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, रत्नाकर, हरिऔध, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी सदृश सभी आचार्य पितामहों का आर्शीवाद प्राप्त हुआ।

छायावादी कवि चतुष्टय के रूप मे पन्त जी का विशिष्ट स्थान है प्रसाद, निराला, पन्त, और महादेवी वर्मा, छायावादी कवि चतुष्टयी के मूलस्तम्भ हैं किन्तु यह कहा जा सकता है कि इस मूलाधार पर शुभ्र संरचना का श्रेय पं० सुमित्रानन्दन पन्त को ही है। उन्होंने छायावादी अंकुर को पल्लवित एवं पुष्पित करके उसकी सर्वतोमुखी रक्षा की। आलोचकों के प्रहारों से प्रसाद एवं महादेवी संकुचित हो जाते थे किन्तु पन्त ने अपने विदग्ध वाणी से उन प्रहारों का सफल प्रतिकार किया। प्रसाद, 'पन्त, एवं निराला छायावादी बृहत्रयी के कवि है, और महादेवी, रामकुमार वर्मा एवं भगवती चरण वर्मा लघुत्रयी या वर्मात्रयी के कवि हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'झरना' के द्वितीय संस्करण के पहले पं० सुमित्रानन्द पन्त का 'पल्लव' बड़ी धूम-धाम से निकल चुका था, जिसमें रहस्य भावना तो कहीं-कहीं, पर अप्रस्तुत विधान, चित्रमयी भाषा और लाक्षणिक वैचित्र्य अत्यन्त प्रचुर परिमाण में सर्वत्र दिखाई पड़ती है।' नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार 'साहित्यिक दृष्टि से छायावादी काव्य-शैली का वास्तविक अभ्युदय सन् १९२० के पूर्व पश्चात् सुमित्रानन्द पन्त की उच्छ्वास नामक काव्य पुस्तिका के साथ माना जा सकता है। इस तथ्य को पन्त जी के समकालीन कवि मित्र निराला जी ने स्वतः स्वीकार किया है।'''फिर छायावादी काव्य-शैली की अपेक्षा निराला जी

के काव्य में स्वच्छन्दतावादी भावधारा का गहरा पुट है।'''प्रसाद जी के आँसू का प्रकाशन सन् १९२५ के आस-पास हुआ। तब तक निराला और पन्त ही नही 'प्रभा' के अनेक कवि तथा 'कुसुम वियोगी' द्विज आदि भी छायावादी काव्य-क्षेत्र मे आ चुके थे। इस समय तक छायावाद एक काव्यांदोलन का रूप ले चुका था। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'छायावाद का महान् आंदोलन पन्त के समान नेता पाने से तेजी से लोकप्रिय हो गया।' डॉ० रामकुमार वर्मा के मतानुसार 'पन्त जी को छायावाद का प्रवर्तक कवि मानना चाहिए क्योंकि छायावाद की मूलाधार प्रवृत्ति प्रतीकों के माध्यम से—पार्थिव जगत की व्यंजना है और जीवनगत सत्य को उसके वास्तविक रूप में पहिचानने की एक अभिव्यंजनात्मक प्रक्रिया है। और निराला, वास्तव में काव्य के सजग और भावुक कलाकार अवश्य हैं क्योकि दोनों ने ही अपने-अपने ढंग से खड़ी बोली को कलात्मक मोड़ देने का प्रयत्न किया है। 'प्रसाद' भावना के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, उन्होने, आँसू, झरना और 'लहर' के माध्यम से प्रकृति के मंगलमय सौन्दर्य को अपनी व्यक्तिनिष्ठ भावना से उभारने का प्रयास किया है। निराला ने दर्शन का आश्रय ग्रहण कर क्रान्ति की उद्भावना से विद्रोही स्वर मुखरित किया। कालान्तर में भले ही प्रसाद और निराला ने भावना को लेकर प्रतीकों का सृजन किया है। किन्तु इन प्रतीकों को लेकर बिम्बवाद का वास्तविक कलात्मक रूप पन्त के काव्य में ही दृष्टिगोचर हुआ और इसलिए मै प्रसाद, और निराला को नहीं पन्त को छायावाद का प्रवर्तक कवि मानता हूँ।'

जगदीश चन्द्र माथुर के अनुसार 'सन् १९३४, के प्रयाग में रहने वाले साहित्यकार के लिए वही सजग कल्पना और मार्मिक अभिव्यंजना की नीव-स्वरूप थे। नये कवियों की पाठ-शैली पर पन्त की छाप अनायास ही मुखरित हो उठती थी। हम लोग उन दिनों अपने लेखों में पन्त जी की पंक्तियों को उसी सहज भाव से उद्धृत करते थे, जैसे कीट्स, शेली को अपने निबन्धों में।'''उस युग के नवोदित भावुक साहित्यकार के लिए पन्त जी करीब-करीब क्लासिक बन चुके थे। बच्चन जी के अनुसार वे और नरेन्द्र पन्त की कविता के अनन्य भक्तों मे से थे—वे दोनों सायकिल पर चढ़े एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रक्खे यूनीवर्सिटी क्षेत्र में 'कब से विलोकती तुमको उषा आ वातायन से' पंक्तियाँ गाते थे।

डॉ० रघुपति सहाय फिराक के तत्कालीन सचिव, समीक्षक और विद्वान साहित्यकार श्री रमेश द्विवेदी के अनुसार फिराक साहब, हिन्दी कविता में केवल दो कवियों को विशेष आदर देते थे और उनके पदों को अक्सर गुनगुनाया करते थे, एक तो साहित्य-क्षेत्र के सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास जी को और दूसरे कवि सुमित्रानन्दन पन्त। वे कहते थे साहित्य-दर्शन, भाव और भक्ति, शब्द, और स्वर की जो अभिव्यंजना इन कवियों की कविताओं में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। फिराक

साहब यह भी कहते थे कि पन्त के काव्य सग्रह उच्छ्वास के प्रकाशन के बाद उन्होंने उसे पढ़ा और वह उन्हें इतनी अच्छी लगीकि उन कविताओं को अक्सर गाया करते थे।

फिराक साहब की ही भाँति डॉ० धीरेन्द्र वर्मा और संस्कृत के आचार्य डॉ० बाबूराम सक्सेना भी पन्त जी के प्रशंसक थे। वह उनकी कविताएँ उच्छ्वास और पल्लव के आधार पर स्मरण से गुनगुनाते थे, और 'घने रेशम से काले बाल' कह कर पन्त जी के बाल भी छू लेते थे।'

हिन्दी काव्य में खड़ी बोली के परिष्कार, प्रतिष्ठापन एवं उन्नयन में पन्त जी का अद्वितीय योगदान तो था ही, साथ ही अपने औदार्य, सौकुमार्य और माधुर्य से वह अनेक काव्य-प्रेमियों के मानस को अपने शब्द-स्वरों से उद्वेलित-और आनन्दित करते रहते थे। वह छायावाद के प्रवर्तक, भाव-भाषा, बिम्ब-प्रतिबिम्ब एवं प्रतीकों की मनोहारी सरिण के पुरोधा महामानव थे।

डॉ० जगदीश गुप्त द्वारा लिखित 'महादेवी वर्मा पुस्तक (प्रकाशक साहित्य अकादमी) में, महादेवी काव्य के तुलनात्मक अध्ययन के अनुसार--' महादेवी जी की संगति प्रसाद और निराला से अधिक पन्त जी में दिखाई देती है 'क्योंकि दोनो मे नारी भाव प्रधान दिखाई देता है। स्वयं पन्त जी भी अपने को प्रारम्भिक कविता मे पुरुष कहने में संकोच करते हैं।'''महादेवी वर्मा, पन्त, निराला एक ही वाद की वर्तुल परिधि में आने पर भी अपनी वैयक्तिक विशिष्टताएँ रखते हैं, जैसे पन्त मे रवि ठाकुर की कविता की स्त्रैण मधुरता है, निराला जी की कविताओं में बुद्धि की प्रधानता का प्रयत्न, प्रसाद' पर शैव दर्शन का प्रभाव है और महादेवी को बौद्ध दर्शन की करुणा के प्रति निविड़ मोह है।'

'' जहाँ प्रसाद ने अपने महाकाव्य को भी गीतमत्ता से भर दिया है, वहाँ निराला ने अपने गीतों में महाकाव्यकता को उतार दिया है। किन्तु महादेवी और पन्त गीतिकाव्य की आत्मा की रक्षा कर लेते हैं। ये दोनों आयासपूर्वक गीत की मधुरता संगीतात्मकता, नाद, सौन्दर्य एवं अपेक्षित तत्वों का निर्वाह करते है। प्रसाद और निराला अपनी प्रतिभा की विशद प्रौढ़ि के कारण गीतिकाव्यो की सीमाओ का निर्वाह, सम्भवत: असाधारण प्रतिभा के कारण नहीं कर पाते, किन्तु पन्त और महादेवी गीतिकाव्य के आदर्श स्वरूप-विधान का प्राय: निर्दोष निर्वाह कर लेते हैं।'

छायावादी कविता के माध्यम से पन्त जी ने 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' के आध्यात्मिक तत्व को धरती के रूप-रस गंध से जोड़ कर उसे मानवमन के अनुकूल बना दिया किन्तु उनकी काव्य-धारा सर्वदा गतिशील रही अत: उसमें यथार्थ-बोध की भावना भी उमड़ती रही। यथार्थ-बोध के इसी स्वर में उन्होंने ग्राम्या'

सुन्दर काव्य संग्रह हिन्दी संसार को दिया जिसमें मिट्टी से जुड़े संघर्षशील (व का साकार शब्द-चित्र एवं युगबोध की उत्कण्ठा है।

सन् १६२६ में 'स्वस्ति जीवन के छायाकाल' के स्वर के साथ ही पन्त जी मानसिक रूप से छायावाद से विमुख होने लगे थे और ३६ में 'युगान्त' के प्रकाशन के बाद तो जैसे उन्होंने छायावाद को विदा कह दी। 'द्रुत झरो जगत् के जीर्णपत्र' का शब्द, उनके नूतन यथार्थबोध का प्रतीक है, जो उनके ग्राम्य जीवन से जुडा लोकमंगलकारी काव्य है।

'रूपाभ' में प्रकाशित अपने एक वक्तव्य में पन्त जी ने स्पष्ट रूप से कल्पना-मात्र के आधार पर रचित, स्वप्नदर्शी कविताओं मे अरुचि प्रकट की थी। 'ग्राम्या' की कविताएँ नवीन आदर्शों की कल्पना से प्रेरित हैं। 'पल्लव' यदि छायावादी काव्य का प्रतीक है तो 'ग्राम्या' प्रगतिशील विचार की पूर्वपीठिका।

काव्य के क्षेत्र में, रहस्यवाद, छायावाद, आध्यात्मवाद, प्रगतिवाद, आदि अनेकवाद हैं किन्तु पन्त जी का किसी भी 'वाद' से वहीं तक लगाव है जहाँ तक वह सत्य का अंश है, जीवन की व्याख्या एवं मानवोचित मूल्यों को प्रदान करने में सहायक है। शाश्वत एवं मानवीय मूल्यों के गायक 'पन्त' विद्वेषजन्य प्रतिक्रिया से भयभीत, हताश या कुंठित नहीं हुए। उन्होंने आधुनिक कवि २ की भूमिका मे अपना दृष्टिकोण सन् १६४२ में ही स्पष्ट कर दिया था किन्तु आवश्यकता थी प्रगति-वादियों के सम्मुख उनके सिद्धान्त की सीमाओं को प्रस्तुत करने की। जनवरी ४६ मे 'उत्तरा' की प्रस्तावना इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि संस्कृति और सभ्यता के के लिए मनुष्य का सर्वांगीण विकास आवश्यक है। 'ज्योत्सना' में मैंने जीवन की जिन बहिरन्तर मान्यताओं का समन्वय करने का प्रयत्न तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) में उनके रूपांतरित होने की ओर इंगित किया है, 'युगवाणी तथा ग्राम्या' में उन्हीं के वहिर्मुखी (समतल) संचरण को (जो मार्क्सवाद का क्षेत्र है) तथा 'स्वर्ण किरण' में अंतर्मुखी (उर्ध्व) संचरण को (जो अध्यात्म का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है, किन्तु समन्वय तथा संश्लेषण का दृष्टिकोण एवं तज्जनित मान्यताएँ दोनों में समान रूप से वर्तमान हैं''''मैं मार्क्सवाद की उपयोगिता एक व्यापक समतल सिद्धान्त की तरह स्वीकार कर चुका हूँ। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उसके रक्तक्रांति और वर्ग युद्ध के पक्ष को मार्क्स के युग की सीमाएँ मानता हूँ।''' अपने प्रगतिशील सहयोगियों की इधर की आलोचनाओं के पढ़ने से प्रतीत होता है कि वे मेरी रचनाओं से अधिक मेरे समर्थकों की विवेचनाओं तथा व्याख्याओं से क्षुब्ध है'''वे अभी व्यक्तिगत आक्षेप, तुलनात्मक स्पर्धा तथा साहित्यिक विद्वेष से मुक्त नहीं हो सके हैं जो अवश्य ही चिन्त्य एवं अवांछनीय है अपने युग को राजनीतिक दृष्टि से का युग और सांस्कृतिक दृष्टि से f का युग मानता

हैं, और वर्ग-युद्ध को इस युग के विराट संघर्ष का एक राजनीतिक चरण मात्र।··· आदर्श और वस्तुवादी दृष्टिकोण में केवल धरातल का भेद है, और ये धरातल आपस मे अविच्छिन्न रूप से जुड़े है।···जिस सत्य को हम स्थूल रूप से क्षुधा-काम कहते हैं, उसी को सूक्ष्म धरातल पर सत्य-शिव सुन्दर। एक हमारी सत्ता की बाहरी भूख प्यास है—दूसरी भीतरी।···सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही शक्तियो से काम लेना चाहिए। ऐसा नही समझना चाहिए कि स्थूल के संगठन से सूक्ष्म अपने आप संगठित हो जाएगा, जैसा कि आज का भौतिक दर्शन या मार्क्सवादी कहता है, अथवा सूक्ष्म में सामंजस्य स्थापित कर लेने से स्थूल में अपने आप संतुलन आ जायगा, जैसा कि मध्ययुगीन विचारक कहता आया है। ये दोनों दृष्टिकोण अतिवैयक्तिक्ता तथा अतिसामाजिकता के दुराग्रह मात्र हैं।'

'रूपाभ' में प्रकाशित इस वक्तव्य से कुछ प्रगतिशील आलोचक सन्तुष्ट नही हुए। डॉ० राम विलास शर्मा के अनुसार, 'हिन्दी पाठक जानते हैं कि 'रूपाभ' निकलते हुए, पन्त जी ने छायावाद से विदा ली थी। उसे कल्पना लोक की वस्तु कहकर यथार्थ की ठोस धरती पर आने का प्रण किया था। युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या आदि इसी काल की रचनाएँ हैं। बहुत से लोग समझने लगे कि पन्त जी मार्क्सवादी हो गये है। इन रचनाओं के पढ़ने से यह बात खुले बिना न रहेगी कि दरअसल पन्त जी ने मार्क्सवाद को पूरी तरह कभी स्वीकार नहीं किया था। पन्त जी की रची हुई मरीचिका में फँस कर हमारे साहित्य की प्रगति असम्भव है। साहित्य का भविष्य जनवादी आंदोलन से जुड़ा हुआ है। स्थायी साहित्य, सुन्दर साहित्य, ऐसा साहित्य जिससे जनता युगों तक अपने हृदय में स्थान दे, कायर, अनैतिक सिद्धान्तहीन व्यक्तियों की रचना नही हो सकती।'

जनवादी विचारधारा से जुड़े अल्पदृष्टि ऐसे आलोचक आँख में काँच लगा-कर सूर्य के प्रकाश को देखते हैं अतः उन्हें वास्तविक प्रकाश का ज्ञान नही हो पाता। आज मार्क्सवाद का सिद्धान्त अपनी मौत मर रहा है और सर्वत्र भारतीय चिन्तन की समन्वयात्मक दृष्टि व्याप्त होने को आतुर है, जो युग क्रांति डंडे की मार से नहीं, अपितु सम्वेदना और मानवता की सहज अभिव्यक्ति से लाना चाहती है। पन्त जी का काव्य एक स्वस्थ, विकासशील काव्य है, वह किसी वाद के घेरे से ग्रस्त नहीं है, और न किसी राजनीतिक झंडे की छाँह से सिक्त। उनकी विचार-धारा भारतीय भाव-भूमि की पीयूष-वर्षिणी वाणी से पोषित और संरक्षित है, जहाँ मानवता खण्ड-खण्ड नहीं है।

कुछ भारतीय आलोचक अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता या साहित्यिक खेमे-बाज़ी के कारण भले पन्त जी के कटु आलोचक बन गये हों किन्तु स्वस्थ दृष्टि और

समालोचनात्मक शैली के विद्वानों ने पन्त जी की सम्यक् समीक्षा की है। रूसी विद्वान चेलिशेव के अनुसार 'पन्त जी की विचार धारा के मूल्यांकन के विषय में विरोधात्मक बातें देखने को मिलती हैं—एक ओर रहस्यवादी पन्त की बातें की जाती है, तो दूसरी ओर मार्क्सवादी पन्त की। पन्त जी की विचार धारा की सर्वोत्तम ग्राहिता की बात हम पहले ही कर चुके हैं। इसमें आधुनिक भारतीय समाज के आध्यात्मिक क्रम विकास की जटिल प्रक्रिया प्रतिबिम्बित हुई है। कुछ आलोचक मानते हैं कि चतुर्थ दशक के अन्त मे पन्त जी मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट हुए ''आगे वह मानते हैं कि पन्त जी बाद में मार्क्सवाद से जैसे दूर हट गये है। पर हमें इस दृष्टि-कोण का खण्डन करना चाहिए। देखिए इस सम्बन्ध में स्वयं कवि क्या कहता है। 'आज भी (सन् १९५०) जब नवमानवतावाद की दृष्टि से, मैं विश्वजीवन के वाह्य-पक्ष की समस्याओं पर विचार करता हूँ तो मार्क्स की उपयोगिता मुझे स्वयं प्रतीत होती है। (चिदम्बरा पृष्ठ १५)'''और यह कोई घोषणा मात्र नही है। अपनी सारी बुद्धिमत्ता, अपना समूचा जीवन कवि ने मानव-सेवा तथा अपने देश वासियों एवं समस्त मानवता की मुक्ति पर समर्पित कर दिया है। 'पूर्ण नहीं कर सका अभी तक, मैं प्रणिहित कवि-कर्म धरा पर' अपनी इस उक्ति को चरितार्थ करने का, मैं सम्भवत. भविष्य में प्रयत्न कर सकूँ'''अब भी 'युगवाणी के युग की अभीप्सा मेरे भीतर ज्यों का त्यों कार्य करती प्रतीत होती है।'''इस धरती के जीवन के प्रति अपने को सार्थक रूप मे समर्पित करने का संघर्ष मै निरन्तर अपने अन्तरतम में जागरूक पाता हूँ।'''अपना शेष जीवन सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्य को समर्पित करना चाहता हूँ' (साठ वर्ष एक रेखांकन पृष्ठ ७४) युगबोध एवं मार्क्सवाद के एक अंश तक ही पन्त जी ने स्वीकारा। भारतीय वैदिक और दार्शनिक सत्य एवं शाश्वत भावबोध से पन्त जी का मन कभी विरत नही हो सका, क्योंकि इसी में—

'ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' की अनुभूति है।

हिन्दी कविता को नई दिशा और भावबोध देने के क्रम में पन्तजी सदा अग्रणी रहे और अपने समकालीन कवियों में उनका स्थान विशिष्ट रहा है। शम्भूनाथ चतुर्वेदी ने (पन्तजी की नयी कविता। युग चेतना वर्ष ४, अंक १० अक्टूबर १९५८ पृ० १०-११) पर लिखा है, ''नयी हिन्दी कविता में आध्यात्मिक काव्य की रचना पन्त जी के अतिरिक्त 'निराला' और 'नवीन' ने भी की है।' निराला और नवीन की आध्यात्मिक कविता में समतल और ऊर्ध्व मानों का समन्वित स्वरूप अनुपलब्ध है, जो पन्त जी की मुख्य लब्धि है। निराला और नवीन का आध्यात्मिक काव्य भक्ति परक, भगवान के प्रति समर्पण की भावना से युक्त है। दोनों की काव्यानुभूति 'सन्त काव्य' के अधिक निकट प्रतीत होती है।

निराला का आध्यात्मिक काव्य सूर काव्य के समान है।"'जहाँ निराला और नवीन मे इस संसार से छुटकारा पाने की भावना प्रधान है, वहाँ पन्त ऊर्ध्व-चेतना और आध्यात्मिक धरातल से पुन. वापस लौटकर संसार के नवनिर्माण की कामना करते है। इस प्रकार पन्त में धरती से पलायन करने की अपेक्षा धरती और स्वर्ग के मिलन की भावना अधिक प्रबल है।"'पन्त समतल जीवन मूल्यों से पूर्ण उदासीन होकर उर्ध्वारोहण में लीन होना नहीं चाहते। आध्यात्मिक तत्त्व का नव-आलोक ग्रहण कर, भौतिक संसार का नव-निर्माण करने को उत्सुक है।"

कुछ आलोचकों की शंका है कि, पन्त जी""अब न छायावादी, हैं, न प्रगतिवादी न प्रयोगवादी, न अकविता—विकवितावादी और न ताजी या नयी कवितावादी। वे आध्यात्मवादी और अरविन्द दर्शन के शुक-पिक हैं। इसी भ्रान्ति मे डॉ० नामवर सिंह ने अपनी एक शोध छात्रा को समझाते हुए कहा था कि "अरविन्द साहित्य एवं दर्शन हिन्दी के लिए दुर्भाग्य बन गया है। क्योंकि इसके प्रभाव से हिन्दी के दो महान कवियों ने अपनी मौलिकता खो दी। अपनी इसी शंका को निर्मूल करने के लिए १४-४-७६ को एक जिज्ञासु शोध छात्रा ने पन्त जी को पत्र लिखा,"''''''मैं समझती हूँ आपके अन्दर पहले भी यही सब कुछ था'''एक अकुलाहट निश्चय ही होगी जिसकी संतुष्टि पांडुचेरी में हुई। लेकिन फिर भी आप वही थे—अपनापन आपने नहीं खोया'''।"

इस पत्र के उत्तर मे पन्त जी ने २-४-७६ को एक पत्र लिखा जो इस शका का समाधान करता है। "आपका दृष्टिकोण प्रभाव ग्रहण करने के बारे मे ठीक है'''इस युग के किसी भी चिन्तक या स्रष्टा को जीवन के इन तीनों पक्षो (आर्थिक वैषम्य को मिटाना—मार्क्स; अहिंसात्मक कर्म—गाँधी; तथा अध्यात्म (विशेषकर मध्ययुगीन) को वैज्ञानिक धरातल देना (श्री अरविन्द) पर दृष्टि रखनी पडती है। मैं स्वतंत्र रूप से भी, जैसा आप, ज्योत्स्ना, 'युगान्त' आदि में पायेगी उसी दृष्टिबोध से संचालित होता रहा हूँ—जो सन् १६४५ के बाद—जब मैं श्री अरविन्द के सम्पर्क में आया'''मैने अधिक प्रशस्त रूप से अपनाया है। पर मैंने एकान्त भाव से अध्यात्म पर ही बल नहीं दिया है। बहिरंतर जीवन की मान्यताओं पर बल दिया है। आप मेरे नवीन प्रबंध काव्य 'सत्यकाम' में जीवन के महत्त्व पर मेरा आग्रह अधिक पायेंगी।

''''"मुझे श्री अरविन्द के साथ ही कार्ल मार्क्स और गाँधी की दृष्टि भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण इस युग के जीवन के लिए लगती है।"

औद्योगिक क्रान्ति और वर्ग संघर्ष के युग में भी पन्त जी ने अपनी शाश्वत् भावभूमि और भारतीय चिन्तनधारा का पोषण किया। रूस की रक्त क्रान्ति और रोमन कैथोलिक मतानुयायियों की धार्मिक अन्धक्रान्ति, प्रगतिशील और प्रगतिवादी

अन्धानुकरण का सहारा पन्त जी ने आँख मूंदकर नहीं लिया। इन विचारधाराओ का लोकमंगलकारी सन्देश ही पन्त जी को स्वीकार्य था।

पन्त जी के व्यक्तित्व और सतत् विकसनशील काव्य की ओर से मुँह फेर कर केवल आलोचनात्मक शुकबुद्धि वाले आलोचकों ने पन्त काव्य के कुछ सूत्रों को पकड़ कर कहना शुरू किया कि "पन्त ने कहा है कि मैं गाँधी से प्रभावित हुआ हूँ अतः उनके काव्य में विशुद्ध गाँधीवाद है, मैं मार्क्स से प्रभावित हुआ हूँ। अत उनके काव्य में विशुद्ध मार्क्सवाद है, और मैं अरविन्द से प्रभावित हुआ हूँ अत उनके काव्य में विशुद्ध अरविन्दवाद है। ऐसे ही अनेक सूत्रवाक्य पन्त जी की रचनाओं से खोजकर अपनी बुद्धि के अनुसार, उन्हें 'ग्राम्या में ग्रामीणों' के प्रति बौद्धिक सहानुभूति दिखाई पड़ती है, तो 'युगवाणी' में युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न। लोकायतन के वागविलास में 'राम विलास शर्मा' और माधो गुरु के रूप में निराला, उनके एक मात्र प्रतिद्वन्दी समकक्ष कवि। 'कला और बूढ़ा चाँद' मे पन्त जी का कला क्षीण बुढापा, 'पतझर' में पन्त जी के जीवन का पतझर, पर भावक्रांति नहीं।"

ऐसे आलोचकों के सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि पन्त जी के विश्वबन्धुत्व एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण को न समझकर उन्हें अपने खेमें के चश्मे के अनुसार पन्त जी का वही रूप दिखा जैसा शीशा उनके चक्षु-चश्में का था। "कालोह्ययं निरवधीः विपुला च पृथ्वी" के अनुसार काव्य के सही समालोचको की दृष्टि जब काव्य के सर्वांगीण अवदान पर जाती हैं, तो वे स्वस्थ आलोचना के माध्यम से काव्य-सौष्ठव का बोध कराते हैं। जैसा कि श्री इलाचन्द्र जोशी ने लोकायतन की समीक्षा करते हुए लिखा है कि, "निःसन्देह महाकाव्य की रचना करना आज की मानसिकता का विरोध करना है, अतः यदि रचनाकार ऐसी भूल करता है— तो उसे सहस्त्रफन फुत्कार करते मिलेंगे। 'लोकायतन' की सबसे बडी विशेषता यह है कि महाकाल के बड़े-बड़े खण्डों को लेकर चलता है। आज जब 'क्षण' को ही देखा जाता है, तब लाजिमी है इस महाकाव्य को भी सरसरी दृष्टि से देखना— बहुत से लोग इसे नहीं पढ़ेंगे, क्योंकि कवि वर्तमान से बहुत आगे देख रहा है, किन्तु कवि आज के युग को भूला नहीं है। आज के घृणित वातावरण मे, जब सारा संसार अन्धकार में है, यदि महाकवि प्रकाश का सन्देश देता है तो उसका विरोध होगा ही। आज का युग ही इतना खंडित है कि वह इस प्रकार की रचना का खंडन करेगा। 'लोकायतन' एक महाकवि का स्वप्न है। इसमें वह सब कुछ समेट कर चला गया है। देखना यह है कि उसकी मूलधारा क्या है, कवि किस शिखर को छू रहा है। जिस कवि को भूचेतना से लेकर, अध्यात्म का सूक्ष्म निरुपण करना है उसमें विसंगतियाँ हो सकती हैं।…कवि तो बहुत आगे की

बात देख रहा है। कवि उस युग की ओर देख रहा है, जब प्रत्येक आध्यात्मिक चेतना आ जाएगी। "···किन्तु इस चेतना से क्षणजीवी व
है।"

लोकायतन की समीक्षा करते हुए डॉ० सावित्री सिन्हा ने (लोकायतन विवेचना संकलन २, पृष्ठ ३९) लिखा है कि 'लोकायतन' का निर्माण साधना की उस मंजिल पर हुआ है, जहाँ भविष्यदर्शी चिन्तन को, अपने स्वप्न धरती पर उतरते दिखाई देते हैं। इस प्रकार 'लोकायतन' दार्शनिक और वैचारिक संभावनाओ का लक्ष्य-प्रधान भविष्योन्मुखी काव्य है।···लोकायतन की प्रतियाँ कुछ शताब्दियो के बाद, जब इस सदी की साक्षी कृति के रूप में पढ़ी जाएँगी उस समय उसकी दार्शनिक विचारभूमि के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाएगा, कि 'लोकायतन' के कवि ने बीसवीं सदी के मर्त्यधाम के दुर्निवार स्थितियों में आत्मा का अमर भवन स्थापित करने का स्वप्न देखा था। यह कवि अँधेरे के बीच रोशनी में जिया। उसने मूल्यों के विघटन, खंडित आस्था, और आपाधापी की हलचल के बीच अन्तश्चैतन्य के रागात्मक वृत्त में सारी पृथ्वी को बाँध देने का क्रान्तिकारी स्वप्न देखा।···और फिर शायद उस युग का कोई सन्त इस कविमनीषी के इन स्वप्नो को साकार बनाने का प्रयत्न करे—वैसे जैसे गांधी ने एक द्रष्टा कवि के स्वप्नो के रामराज्य को पृथ्वी पर उतारने की चेष्टा की थी। यही 'लोकायतन' और उसके कवि की सिद्धि है।"

प्रत्येक महान कवि आत्मदर्शी और चिन्तनशील होता है। मनुष्य एवं सृष्टि को आनन्द और शान्ति के उत्स की ओर अग्रसर करने के लिए उसकी अन्तश्चेतना मे संकल्प होते हैं। इन्हीं संकल्पों का स्फुरण काव्य के रूप में प्रवाहित होकर जब पाठक या जनमानस के सम्मुख आता है तो कुछ समय के लिए वह भी कवि की भावभूमि में मग्न होता हुआ रस-स्निग्ध हो जाता है। पन्त जी का सम्पूर्ण जीवन एकान्त साधक, युगद्रष्टा कवि का था। अपनी कल्पनाओं को वे साकार रूप देना चाहते थे और इसी ध्येय से 'लोकायतन' की स्थापना गंगा के किनारे झूँसी मे श्रीनारायण चतुर्वेदी के सौजन्य से करना चाहते थे, जिसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, चार विभाग होते—

(१) ज्योतिद्वार (२) संस्कृतिद्वार (३) कलाद्वार और (४) जीवनद्वार, वे ज्योति, कला, संस्कृति द्वार के माध्यम से मनुष्य के जीवन को आदर्श बनाकर नये मनुष्य की सर्जना करना चाहते थे। अपने स्वप्नदर्शी कवि को यथार्थ की भूमि पर उतारना चाहते किन्तु वह स्वप्न साकार एवं प्रत्यक्ष रूप धारण नहीं कर सका। अपने अमूर्त स्वप्न को मूर्त रूप उन्होंने लोकायतन महाकाव्य में दिया कवि वंशी माधव गुरु हरिशंकर सुन्दर संयुक्ता प्रीति आस्था और मेरी आदि चरित्रो

के माध्यम से उन्होंने जगत मे व्याप्त विसंगतियों का दिग्दर्शन कराते हुए एक ऐसे लोक की, या भविष्य की कल्पना की, जहाँ मनुष्य प्रेम और सद्भाव के माध्यम से ईश्वरीय चेतना का अनुभव करने लगता है। जिस जगत में वैर-विरोध प्रेम पारावर में तिरोहित हो जाता है, जहाँ मनुष्य जीवन में ही ब्राह्मी सत्चित आनन्द का अनुभव करने लगता है। कवि ब्रह्म के विराट सौन्दर्य और चेतना को मानव में स्थापित करने के लिए जिज्ञासा करता है और फिर उसी चेतना को सृष्टि में उतार देना चाहता है—

'कौन यह निराकार निस्सीम
निरामय पुरुष व्याप्त सर्वत्र
तारकों के मणिकण से दीप्त
नील का सिर पर जगमग छत्र
समीरण जीवित श्वोसोच्छ्वास
सूर्य-शशि जाग्रत अनिमिष नेत्र
क्षितिज तट प्रेम बाहु परिरम्भ
धरा पद-पीठ-कर्म गतिक्षेत्र।

प्रभु से कवि की प्रार्थना है कि वह सृष्टि में स्वयं अवतरित हो उसके अणु-अणु को अपनी आभा और शक्ति से भर दे—

प्रभु सृष्टि न रचते स्वयं सृष्टि बन जाते
निज से निज में ही अभिव्यक्ति वह पाते।

संघर्षशील एवं विखण्डित युग में महाकवि पन्त ने 'लोकायतन' की रचना से एक दिव्य लोक एवं भावी नव निर्माण की कल्पना की। सम्भवतः मनुष्य अपनी यथार्थवादी और पृथकतावादी दृष्टि से ऊब कर कभी ऐसे लोक की स्थापना के लिए उन्मुख हो। 'लोकायतन' में कवि ने भाषा को भावों के अनुसार प्रयुक्त किया है। उनकी भाषा बिम्ब प्रतिबिम्ब, मूर्त, अमूर्त कल्पना, शब्दों की मञ्जुलता लेकर साकार चित्र उपस्थित करती है। कवि के मन की पवित्रता एवं आस्था उस निस्सीम का आह्वान सृष्टि पर करती सी लगती है।

उनकी भाषा और शिल्प सौन्दर्य के सम्बन्ध में, फिराक साहब का कथन है, कि 'पन्त जी स्वयं कीट्स की नजाकत लिए हुए रचना करते हैं, अन्य कवियों की रचनाओं में प्रकृति का उतना सजीव चित्रण नहीं है, जितना पन्त में। प्रकृति का सौन्दर्य पन्त जी की रचनाओं में बेनकाब दृष्टि गोचर होता है। उनके काव्य में चिन्तन की गम्भीरता और भारतीय दर्शन की पूर्ण ग्राह्यता स्पष्ट रूप से प्रति-

बिम्बित होती है, जो उन्हें भारत की समस्त भाषाओं के कवियों में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।'

पन्त जी के काव्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध समीक्षक डॉ० दूधनाथ सिंह का मत है कि, 'उनका (पन्त जी) समस्त काव्य अन्तर-मुखता का काव्य न होकर आत्मोत्कर्ष का काव्य है। यह आत्मोत्कर्ष अपनी समग्र संरचना में एक सार्वभौम शुभेच्छा तक ले जाता है। इसीलिए उनका काव्य अतीतोन्मुखी न होकर वर्तमान के फलक पर भविष्योन्मुखी काव्य है। यह सार्वभौमिक शुभेच्छा ही वह तत्त्व है, जिसके भीतर से कवि पन्त ने विश्व-मानव और नव-मानव की परिकल्पना को अपनी कविता में सार्थक किया है।

(तारापथ की भूमिका—सम्पूर्णता का कवि पृ० ५१)

पन्त जी का काव्य सतत गतिशील रहा। युग प्रवाह के साथ काव्य ने विविध आयामों को छुआ। जहाँ उनमें छन्द, लय और पद-विन्यास के मानक प्रतीक हैं, वहीं मुक्तकाव्य-धारा से भी वह असम्पृक्त नहीं रहे, किन्तु सभी कविताओं में भाषा और भाव का संस्कार है। केवल परिवर्तन या वैविध्य के लिए असहज और अकविता के शब्द उन्हें स्वीकार नहीं थे। डॉ० मोहन अवस्थी के अनुसार, 'आधुनिक कवियों में सुमित्रानन्दन पन्त का व्यक्तित्व सतत् जागरूक, कला सचेष्ट, नव दिशान्वेषी तथा गतिशील है। पन्त की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी कला एक दिशा में चरम सीमा पर पहुँचती है, वहीं वह किसी दूसरी दिशा की ओर संकेत कर देते हैं। पन्त मूलतः सौन्दर्य के कवि हैं, लेकिन, उनके काव्य में सौन्दर्य के आलम्बन बदलते रहे हैं।'

(हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास)

पन्त जी के काव्य-प्रवाह ने हिन्दी धारा को नई दिशा देकर, रस-छन्द-ध्वनि और संवेदना का ऐसा स्रोत निर्मित किया, जिसमें ब्रज की माधुरी मिठास घुलकर मनमोहक और हृदयग्राही बन गई। खड़ी बोली को काव्य की समर्थ भाषा का श्रेय देने का कार्य, पन्त से अधिक किसी ने नहीं किया। इस सम्बन्ध में साहित्य महोपाध्याय कविवर डॉ० प्रकाश द्विवेदी का एक छन्द प्रस्तुत है—

'कोमल कल्पना कामिनी को सजा, तूलिका से उसकी रंगी चोली
भाषा सिंगार के साज सजा, दी ललाट में भाव की सुन्दर रोली।
कान्त पदावली वाली ब्रजी की, है ढाली सुमाधुरी में खड़ी बोली
भूषित काव्य की किन्नरी ने, रस रंग की ज्यों कलशावली खोली।'

पन्त जी की स्मृति एवं उनका स्नेह सर्वदा साहित्यकारों को प्रेरणा देता रहा। नई कविता के पुरोधा कवि डॉ० जगदीश गुप्त ने उनकी स्मृति में लिखा है—

'आत्मा के उन्नायक गायक युग के निर्झर
मानव-मन के शिल्पी गढ़ते मूर्ति शब्द-शर
स्वर्णिम रंग से रहे अल्पना रचते भूपर
धनी कल्पना के अर्थों के, साधक कविवर
हिम आलोकित आँखों में अरुणिम आभा भर
पुष्प-गुच्छ के तरु बुरुश के करते मर्मर
लगता जैसे स्वयं तुम्हारी कविता के स्वर
दीप्त क्षणों में, वाणी बनते कमल पीठ पर'

यथार्थ और आत्मा का समन्वय पन्त सदृश कोई आत्मवान कवि ही कर सकता है। प्रकृति और ब्रह्म एक दूसरे के परिपूरक और अभिन्न है। महाकवि पन्त ने अपने लेखन और जीवन में दोनों का साहचर्य साकार कर दिया है। पंच-भौतिक शरीर के मन्दिर मे उनकी आत्मा का स्वर सदा गूँजता रहा। वायु एवं ध्वनि प्रदूषण से क्षुब्ध मानव आज जैसे शुद्ध पर्यावरण के लिए आकुल है, वैसे ही वाग्प्रदूषण से ऊब कर, कविमन भी शुद्ध संस्कारित वाङ्मय की तलाश में पन्त जी की आत्मिक वाग्धारा में विश्राम पा सकेगा।

युग-प्रवर्तक

युगसारथी, युगपुरुष के रूप में जब किसी व्यक्ति की कल्पना की जाती है तो सर्वप्रथम उस व्यक्ति के जीवन पर्यन्त कार्यों एवं क्रियाकलापों पर एक विवेचनात्मक दृष्टिपात करना आवश्यक होता है। वसुन्धरा में वीर पुरुषों राज-नीतिज्ञों और समाज सेवियों की कमी नहीं है। सभी अपने-अपने ढंग से समाज के लिए कार्य करते हैं, किन्तु ऐसे कुछ ही पुरुष होते हैं जो कालजयी कहलाते हैं। राजनीतिज्ञ या शासक अपनी राजस् प्रकृति के कारण अपने हित और प्रशस्ति में अनेक सामाजिक, आर्थिक, नीतिगत कार्य करते हैं किन्तु उनके कार्य, काल या सत्ता-परिवर्तन के साथ क्षीण या समाप्त हो जाते हैं। समाज को सम्यक् दृष्टि और सही दिशा देने का कार्य प्रायः सन्त या मनीषी साधक कवि ही करता है जिसके एक एक शब्द, एक-एक छन्द, जनमानस में शाश्वत आनन्द की तरंगें बिखरते रहते हैं। पं० सुमित्रानन्दन पन्त भी इसी कोटि के युगपुरुषों में से एक है, जिन्होंने अपने जीवन के आदर्शों से समाज के प्रबुद्ध, सुधी जनों को नई प्रेरणा दी और अपनी काव्य-सर्जना से भाषा एवं भाव को नई स्वर्ण मंजूषा से संस्कारित किया।

पन्त जी का जन्म २० मई, १९०० को हुआ जब बीसवीं सदी पाँचवें मास में थी। पर्वतीय उपत्यका की प्राकृतिक छटा में पन्त जी की प्रथम श्वास के साथ ही उनके हृदय में प्रकृति की सहजता, सौन्दर्य और सुकुमारता अन्तर्निहित हो गई। माँ की गोद केवल छह घण्टे तक ही मिली और फिर आजीवन प्रकृति ही सहचरी और माँ के रूप में रही। संघर्ष और कर्मठता ने पन्त जी को जीवन और समाज के प्रति नया दृष्टिकोण दिया। समय के साथ यही दृष्टिकोण एवं जीवन-दर्शन व्यापक होकर समाज के सम्मुख साहित्य का कल्पवृक्ष बना।

उन्नीसवीं सदी औद्योगिक क्रान्ति का युग थी। समाज की संचार व्यवस्था अधिक गतिशील हो गई थी और उसी के साथ चिन्तन धारा और अभिव्यक्ति भी नया रूप धारण करने के लिए आकुल हो रही थी। साहित्य में रहस्यवाद एवं प्रशस्ति के पद भी बन्धनमुक्त होने के लिए छटपटा रहे थे भारतीय वाङ्मय की जननी संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी, फारसी के मकड़जाल में फँस कर मन्द पड़ गई थी और काव्य-भाषा की एक मात्र संरक्षिका ब्रजभाषा भी नए संघर्षशील युग की सम्पूर्ण संवाहक वाणी बनने में अक्षम लग रही थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सदृश

मनीषी कवि 'निजभाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' का मन्त्रस्वर दे रहे थे। ऐसे समय में उन्हें सुमित्रानन्दन पन्त सदृश एक तरुण नायक कवि मिला, जिसने भाषा को रूप, शब्द, शृंगार एवं भाव दिया।

सुमित्रानन्दन पन्त, स्वभाव, शरीर और परिवेश से विशिष्ट गुण सयुक्त स्वाध्यायी सत्पुरुष थे। प्रकृति के आँचल में मातृविहीन शिशु को पुष्पों की सुरभि ने सहृदय किया और आकाश के टिमटिमाते तारकों ने संघर्ष और जीवन की प्रेरणा दी। सम्पन्न परिवार के सुख-समृद्धि से विरत उनका मन उन्हे विचरणशील और मननशील बनाता रहा। पाठशालयीय और विश्वविद्यालयीय उच्च शिक्षा के अभाव में भी उन्होंने अनेक सद्ग्रन्थों का अध्ययन एवं मनन किया और समकालीन साहित्य, तथा अंग्रेजी साहित्य का भी समुचित ज्ञान प्राप्त किया। सन् १९२१ के असहयोग आंदोलन में इन्हें गाँधी जी के अप्रतिम व्यक्तित्व का परिचय मिला और इन्हे अपने देश की दुर्दशा की चिन्ता अधिक पीड़ित करने लगी। औपनिषदिक-ज्ञान, आत्मचिन्तन एवं आत्म संस्कार के स्वर ही 'वीणा' के रूप में गूँज उठे—

"निराकार तम मानो सहसा
ज्योतिपुञ्ज में हो साकार
बदल गया द्रुत जगत जाल में
धर कर नाम रूप नाना
× × ×
खुली पलक फैली सुवर्ण छवि
खिली सुरभि डोले मधु बाल
स्पंदन कम्पन औ नवजीवन
सीखा जग ने अपनाना
(वीणा १९१९)

उन्नीस वर्ष की अवस्था में ही वीणा वादिनि ने पन्त जी के हृदय में 'वीणा' के स्वर झंकृत कर उसे ग्रन्थ के रूप में समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। आत्मचिन्तन के यह स्वर जीवन पर्यन्त उन्हे प्रेरित करते रहे और पन्त ने जीवन भर अपने साहित्य के द्वारा जगत को सत्यं शिवं सुन्दरम् का संदेश दिया। उनके साहित्य और जीवन में एकात्मकता थी, उनकी भाषा और भाव में जागृत सम्वेदना थी, उनकी जिजीविषा और संघर्षशीलता में आत्मशक्ति थी। इन्हीं गुणों के कारण अनेक संघर्षों और विरोधों के बावजूद पन्त जी और 'पन्त' का साहित्य कालजयी एव युगप्रवर्तक कहा जा सकता है।

यद्यपि उस युग में भाषा अपना संस्कार बदल रही थी। वाणी अपनी अभिव्यक्ति के लिए नया कलेवर धारण कर रही थी। ब्रजभाषा का स्थान खड़ी

बोली ले रही थी, प्रसाद सदृश हिन्दी के सशक्त कवियों का आविर्भाव हो चुका था, किन्तु खड़ी बोली हिन्दी के संस्कार और पूर्ण प्रतिष्ठा के लिए एक सशक्त, कल्पनाशील अप्रतिहत व्यक्तित्व की अपेक्षा थी; इस अपेक्षा की पूर्ति श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने की। खड़ी बोली की प्रतिष्ठा-प्रौढ़ि में पन्त जी को ब्रजभाषा के प्रेमी अपने वरिष्ठ कवियों एवं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल सदृश कवियों का कोपभाजन भी बनना पड़ा, किन्तु पन्त जी अपने पथ से विचलित नहीं हुए और 'विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना प्रारभ्य चोत्तम जनाःन परित्यज्यन्ति' की उक्ति को सार्थक करते हुए खड़ी बोली के लिए एक विशाल राजपथ निर्मित किया। यह राजपथ इतना विशाल और ज्योतित था कि अनेक भावी साधक कवि इस प्रभा-मण्डल से आकृष्ट होकर इसी पथ के अनुयायी हो गए। खड़ी बोली काव्य-भाषा की चकाचौंध में ब्रजभाषा क्षीण हो गयी और प्राय. विसर्जित भी।

जिस युग में पन्त जी का अविर्भाव हुआ, वह युग भाषा और जगत के लिए विवादों और वादों का युग था। साहित्य के क्षेत्र में रहस्यवाद, संघर्ष शील जगत में साम्यवाद, सामंतवाद एवं अधिनायकवाद का जोर था। वादों की इस स्थिति मे कल्पना शील कवि पन्त को अपना नया रास्ता बनाना था जो भारतभूमि की उत्कृष्ट चेतना से ओतप्रोत समन्वयकारी, एवं लोकोपकारी हो, जो संघर्षशील विनाशकारी बावंडरीय आयुध युग को शांति और सम्वेदना के स्नेह निर्झर से आल्पावित कर सकें।

ऐसी स्थिति में आत्माभिव्यक्ति के लिए, साहित्य और समाज को रसात्मक अनुभूति और चिन्तन प्रवणता के लिए, रहस्यवादी पथ से विलग एक नई काव्य-धारा का प्रवाह आवश्यक था। रहस्यवाद के माध्यम से कवियों ने ईश्वर, आत्मा, स्वकीया, परकीया, व्याज और स्तुति की विधाओं में अनेक काव्य-ग्रन्थ लिखे किन्तु, युग परिवर्तन के साथ भाषा को और पुष्ट, संघर्षशील विचार वहन करने की आवश्यकता थी। अतः रहस्यवाद के स्थान पर छायावाद का उदय हुआ, जिसके माध्यम से कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति को अधिक स्वतन्त्रता दी। जग की पीड़ा को निकट से अनुभव करने और ईश्वरीय सत्ता की व्यापकता में वेदना को सुलाने का सुख, खुले हृदय और मन से दूसरे का सुखदुख बाँटने की लालसा, पन्त जी की पंक्तियों में अभिव्यक्त है—

'चूर्णशिथिलता सी अँगड़ा कर
होने दो अपने मे लीन
पर पीड़ा से पीड़ित होना
मुझे सिखा दो कर मदहीन

× × ×

हाँ सखि आओ बाँह खोल हम
लग कर गले जुड़ा लें प्राण
फिर तुम तम, में मै प्रियतम में
हो जावे द्रुत अन्तर्धान

(छाया-पल्लव से १६२०)

बीस वर्ष के नवयुवक कवि पन्त में जगत को उस प्रियतम की छाया-रूप मे देखने का स्वप्न, छाया का ईश्वर में विलीन होने की आकांक्षा और जगत की पीडा से पीड़ित होने की सम्वेदना, पन्त जी को किशोरावस्था ही वरिष्ठता के पद पर प्रतिष्ठित करने में सक्षम है। पन्त जी की भाषा भाव की सहज संवाहिका है। स्रोतस्विनी की भाँति उसके कलकल स्वर स्वतः स्फूर्त हैं। कवि को भाषा के श्रृंगार के लिए श्वेदश्लथ नही होना पड़ता। भाषा और भाव की प्राञ्जलता, तथा प्रतिकार के परिहार ने पन्त जी को छायावादी कवियों में अग्रगण्य बना दिया। प्रसाद जी छायावादी कवियों की आलोचना को झेल नहीं पाते थे, निराला जी, आत्मविस्मृति के भाव में भूल जाते थे, किन्तु पन्त जी ने एक नायक के रूप में छायावादी झंडे का मान रक्खा, और उसे शिखर तक फहराया। छायावादी बृहत्त्रयी में प्रसाद पन्त और निराला आते है। और लघुत्रयी में महादेवी मर्वा, डॉ० रामकुमार वर्मा और भगवती चरण वर्मा का नाम आता है, किन्तु इन सब में सबसे प्रतिष्ठित पद पं० सुमित्रानन्दन पन्त का ही है। पन्त जी ने सहजभाव से विरोध को झेला और विरोधियों को अपनी उत्कृष्ट रचनाओं से छायावाद के महत्व को स्वीकार करने के लिए मजबूर कर दिया। छायावादी कविता के माध्यम से पन्त जी ने प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य एवं मानव चेतना को, लोक मंगलकारी शब्द-सरिता से संसिक्त कर जनमानस में प्रवाहित किया। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि पन्त जी का काव्य-वैभव सम्पूर्ण संस्कारों और काव्य के सभी प्रतीको और मानो के साथ सर्वोपरि प्रतिष्ठित है।

भाषा के सम्बन्ध में पन्त जी का निश्चित मत था। उनके अनुसार भाषा को शुद्ध और संस्कारित होना चाहिए। संस्कृत समस्त भाषाओं की जननी है और हिन्दी उसकी तद्रूप मानस-पुत्री है। अतः हिन्दी भाषा को संस्कार के लिए और शुद्धता को अक्षुण्ण रखने के लिए संस्कृत के निकट होना आवश्यक है। संस्कृत भारत की मनीषा, संस्कृति, दर्शन और आत्मबोध की परिचायिका है। अत. भारत को अपने सर्वांगीण उत्थान और आत्माभिव्यक्ति के लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता है जो रस, और अनुभूति से सम्पृक्त हो और वह भाषा देवनागरी लिपि हिन्दी ही है। पन्त जी हिन्दी भाषा में किसी घाल-मेल के पक्ष में नहीं थे। उनके मतानुसार हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो देश को राष्ट्रीयता के स्वर में जोड

सकती है, क्योंकि इसका सूत्र संस्कृत के अधिक सन्निकट है और देश ही क्या विदेश की भी बहुत सी भाषाओं में संस्कृत के शब्द और स्वर ध्वनित होते हैं। अपने इसी आदर्श की सम्पूर्ति में पन्त जी ने हिन्दी भाषा को संस्कारित किया और अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों की सर्जना की, जिसमें भारत की परम्परा और लोक-चेतना मुखरित होती है।

साम्यवादी विचार-धारा तथा मार्क्स और लेनिन के उदय के साथ भारत में भी प्रगतिशील लेखकों की मंडली का उदय हुआ। निश्चय ही ये रचनाकार साम्यवादी विचारधारा के पोषक या पिट्ठू के रूप में उदित हुए और इन्होंने रूस और चीन की भाँति भारत को भी नयी रक्त-क्राँति की नीति में ढकेलना चाहा, जहाँ समाज के लिए व्यक्ति की कोई विशेष स्वतंत्रता नहीं रह जाती। अधिनायक अपनी नीति के अनुसार पूरे समाज की आत्माभिव्यक्ति और स्वतन्त्रता राष्ट्रहित में बन्दी बना सकता है, या राष्ट्र के लिए व्यक्ति की आहुति दे सकता है, चाहे इसमें न्याय या अन्याय हो। इस प्रवृत्ति या विचारधारा के अनुसार कुछ ही लोग सम्पूर्ण समाज के एकमात्र रक्षक या भक्षक हो जाते हैं। जब मनुष्य अपने अहं के आगे वैयक्तिक और लोक-चेतना को उपेक्षित करता है और अपने ही आदेश को आदर्श मानकर उसका अनुपालन करता है तभी अन्याय का स्वर उभरने लगता है। भारत में प्रगतिशील लेखकों का एक वर्ग ऐसा उभरा जो रूस और चीन की साम्यवादी विचारधारा का अनुयायी हो गया। जन जागरण और सर्वहारा संस्कृति के उदय के साथ समाजवादी और प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई, जिसका आदर्श रूस या चीन विशेष रूप से था। जनजागरण के इस अभियान से पन्त जी भी प्रभावित हुए और उन्होंने छायावादी रचना छोड़कर लोकोन्मुखी काव्य की रचना की। 'ग्राम्या' के स्वर इसी जनवादी विचारधारा से ओत-प्रोत हैं किन्तु पन्त जी ने भारत के समन्वयवादी दृष्टिकोण को तिलांजलि नहीं दी। रक्त-क्रान्ति से समाजवाद की स्थापना पन्त जी का आदर्श नहीं था। उनका आदर्श भारत की समन्वयवादी चेतना से ओत-प्रोत था। अरविन्द, गाँधी और रवीन्द्र की परिपाटी, भारत की सोंधी भूमि और प्रकृति की भीनी सुगन्ध से संसिक्त आत्मवत् सर्वभूतेषु की मान्यता से परिपोषित है। जहाँ 'आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना' है जहाँ सर्वेभवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामय: सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा काश्चिद् दुखभाग भवेत्' का आदर्श है, वहाँ अधिनायकत्व की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य की अन्तश्चेतना को उद्वेलित कर उसे लोकोपकार के लिए प्रेरित करना ही सत्साहित्य का कार्य है। प्रचारात्मक और नारेबाजी का विघटनकारी स्वर समाज के लिए अधिक उपयोगी नहीं हो सकता। दंडात्मक आदेश मनुष्य को आदर्श नहीं बना सकते क्योंकि भयाक्रान्त और अन्यायपूर्ण ढंग से अतिशय दंडित

व्यक्ति या समाज अपनी छटपटाहट में कभी-न-कभी सारी व्यवस्था को ही धराशयी कर सकता है। रूस की साम्यवादी परम्परा का अन्त मनुष्य की आत्मिक छटपटाहट के कारण ही हुआ।

युगद्रष्टा कवि होने के नाते पन्त जी को यह आभास था कि प्रगतिशील आयातित विचार भारतीय समाज को विखंडित भले कर दे, परन्तु एक आदर्श राज्य के रूप में प्रतिष्ठित नहीं कर सकता। अपने इन्हीं विचारों और आदर्शों के कारण पन्त जी को प्रगतिशील लेखकों का आक्रोश भी झेलना पड़ा। उन्होंने पन्त जी को कवि के रूप में भी नकारना प्रारम्भ किया। किन्तु पन्त जी ने अपने आत्मिक स्वर के आगे इन दादुर ध्वनियों की कभी परवाह नहीं की।

'पन्त जी' अपने काव्य और आदर्शमय जीवन के द्वारा एक सभ्य, सुसंस्कृत सम्पन्न, सम्वेदनशील समाज की स्थापना करना चाहते थे। पुरातन और अधुनातन के समन्वय से भयमुक्त आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते थे। 'लोकायतन' की परिकल्पना और रचना उनके इसी आदर्शमय और भयमुक्त स्वतः स्फूर्त सृष्टि की पूर्व पीठिका है। कवि और चिन्तक आदर्श और श्रेयस् की परिकल्पना कर अपने शब्दों और काव्यों के माध्यम से अनन्त आकाश में शब्द-ध्वनियों की तरगें बो देता है, जो समय के साथ पृथ्वी पर अपना आकार ग्रहण करके मानव को सुख और शान्ति का सन्देश देती हैं। महाकवि पन्त केवल शब्द शिल्पी ही नहीं थे वे एक महामानव भी थे। उनका हृदय अपार करुणा और अगाध स्नेह से ओत-प्रोत था। कण-कण में आत्मीयता, तरुपल्लवों, पशुपक्षियों और सृष्टि के प्रत्येक प्राणी की भाव सम्वेदनाएँ उनकी महान विभूतियाँ थी। इन्हीं विभूतियों के बल पर उन्होंने अप्रतिम काव्यों की रचना की, जिसमें आत्मा और प्रकृति का स्वर मुखर है।

वादों के युग में पन्त जी वादमुक्त और निर्विकार रहे। एकाकी जीवन मे आत्मतुष्ट, न बहुत की कामना, न कम से असन्तुष्ट। साधु स्वभाव, सम्वेदनशील सौम्य व्यक्तित्व, उत्कृष्ट आदर्शों के धनी, पन्त सदृश महान विभूतियों का जन्म कई सदियों में कभी होता है। साहित्य के उच्चतम शिखर को छू लेने के बाद भी वे नए रचना-धर्मियों के लिए सहज प्रेरणा-स्रोत थे। अनेक पुरस्कारों और अलंकारों से विभूषित होने पर भी कभी उन्होंने अपने विभूषण का मोह नहीं किया। हिन्दी भाषा के प्रश्न पर पद्मविभूषण की उपाधि उन्होंने क्षण भर में तृणवत् त्याग दी। जीवन के प्रति भी उन्हें कभी मोह नहीं था। वह ईश्वर भक्त थे और ईश्वर की आज्ञा ही सर्वोपरि मानते थे। जब समय आयेगा, चल देंगे। उनका सम्पूर्ण जीवन ईश्वर की इच्छा की सम्पूर्ति और वाग्देवी की आराधना थी।

काव्य के नए स्वरों और युग की यथार्थवादी दृष्टि की कल्पना कर उन्होंने कविता को छन्दमुक्त करके नवीन भाव-बोधों से भरा। उन्होंने नई कविता को प्रोत्साहित किया और उसे नए बिम्बों और प्रतीकों से अलंकृत किया। युगबोध और यथार्थ की कविताओं में भी उनकी कविता संस्कारशील रही और उसमें कभी ऐब्सर्डिटी के अंकुर नहीं उगे। छन्दमुक्तता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के नाम पर जहाँ आज नए और पुराने कवियों में असंस्कृत, भोगवादी, जुगुप्सित, काव्य-रचना की ईर्ष्याजन्य प्रवृत्ति उभर रही है, वहीं पन्त जी में यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ आत्मपरक संस्कारशीलता है। काव्य के नए उपमानों, विश्वकविता, अकविता की लालच में बड़े से बड़े और छोटे कवियों ने भी कुछ ऐसी रचनाएँ की, जिससे चमत्कृत होकर पाठक या आलोचक उधर आकृष्ट हों, किन्तु पन्त जी ने इन झंझावातों में भी कभी भारतीय चिन्तनधारा और भाव-प्रवणता की उपेक्षा नहीं की।

काव्य सोपान के तृतीय चरण मे जहाँ महाकवि निराला ने विभिन्न ढंग की चमत्कृत रचनाएँ—

'धिक मद गरजे बदरवा
चमकि बिजली डरपावे,
सुहावे सघन झर नरवा
कगरवा, कगरवा

और

ताक कमसिनवारि
ताक कम सिनवारि
ताक कम, सिन वारि
सिनवारि, सिनवारि—

(राग-विराग—पृष्ठ ११६-१७)

—लिखीं, वहीं पन्त जी ने चमत्कार के लिए काव्य के मानदण्डों को नहीं तोड़ा।

'अपने' खड़े जंग' के स्वर में जहाँ महाकवि निराला काव्य में वैविध्य के परिचायक है, वहीं महाकवि पन्त आत्मिक उद्‌गीथ के प्रणेता और लोक-रंजन के शाश्वत स्वर। जीवन के अन्तिम पड़ाव पर निराला को भी आस्था का सहारा लेना पड़ता है—

'दुरित दूर करो नाथ
अशरण हूँ गहो हाथ
हार गया जीवन रण
छोड़ गये साथी जन

(राग-विराग)

पन्त और निराला दोनो आस्थावान् कवि है। मानव और समाज की मंगलकामना के लिए उन्हें भारतीय-दर्शन की आत्म-चेतना पुकारती है और दोनों महाकवि संसार और आत्म-कल्याण के लिए उस परम प्रभु की कृपा चाहते हैं जिसके स्पर्श से धरती का कण-कण स्फुरित है। जीवन-चिन्तन, जरा-मृत्यु से त्राण के लिए, अंतिम शरण प्रभु का ही द्वार है—पन्त जी ने भी कहा है—

तुम्हें नहीं देता यदि अब सुख
चन्द्रमुखी का मधुर चन्द्रमुख
रोग, जरा, भय मृत्यु देह में
जीवन-चिंतन देता यदि दुख
आओ प्रभु के द्वार।
(स्वर्णधूलि से)

'पन्त' का स्वर समन्वयवादी है, वह धरा पर मूर्त भक्ति और निर्मल प्रेम-पीयूष के आकांक्षी है। उनकी कविताएँ भविष्य की मङ्गल कामना से अभिषिक्त और युग चेतना से परिपोषित हैं—

'रह पायेगी नहीं
मनुज के प्रति विरक्ति तब
धरा प्रीति में परिणत होगी
मूर्त भक्ति जब।
रहे देह में क्यों मन सीमित ?
खुले भावना के दिगन्त
आत्मिक ऐश्वर्यो से
आलोकित।

अपने आदर्शों और मर्मस्पर्शी रचनाओ द्वारा महाकवि पन्त ने मानव को नया भाव-बोध देकर उसके मानस को लोककल्याण के लिए प्रेरित किया है। नया-युग इन्ही आदर्शो की छाँह में आत्मिक ऐश्वर्यो से आलोकित हो कवि के स्वप्नदर्शी लोक का सृजन करेगा।

चिदम्बरा की 'चरण चिन्ह' शीर्षक भूमिका के अन्त में महाकवि पन्त ने लिखा है, 'आज समस्त मानवता तथा विश्व-जीवन को एक सक्रिय, जीवनोपयोगी, आध्यात्मिक चेतना तथा सांस्कृतिक, पीठिका प्रदान करना है। आने वाला मानव निश्चय ही न पूर्व का होगा, न पश्चिम का। वह देशों (दिशा) की सीमाओं एवं विभेदों को अतिक्रम कर काल के शिखर की ओर आरोहण करने को उत्सुक

होगा। वह विज्ञान को अपना उपयुक्त वाहन बना सकेगा। वही काल के हृदय-कमल में स्थित, कालविद् अत्याधुनिक मानव होगा जिसे धारण कर धरती सूर्य की परिक्रमा करने का अनुभव करेगी।'

इस अत्याधुनिक विश्वमानव की परिकल्पना, आध्यात्मिक चेतना तथा सांस्कृतिक पीठिका के स्वप्नदर्शी कवि का स्वप्न, उनकी शब्द-सरिता के प्रवाह से तरंगित होकर मानव-मन को उत्तरोत्तर आनन्द के उत्स की ओर अग्रसर करता रहेगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सदृश समालोचक ने उन्हें अपनी विवेचानात्मक समीक्षा में सर्वाधिक स्थान दिया है। उनके इतिहास के उन्नीस पृष्ठों में सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य का विवेचन है। चौदह पृष्ठ प्रसाद को, चार पृष्ठ निराला को और एक पृष्ठ महादेवी को मिला है। भक्तिकालीन कवियों में तुलसीदास ही ऐसे कवि हैं जिन्हें शुक्ल जी ने इतिहास में १६ पृष्ठ दिए हैं, जो पन्त के बराबर हैं।

भले ही हम सर्वरूपेण पन्त जी को तुलसी की बराबरी न दें, किन्तु जिसने भी पन्त जी का साक्षात् दर्शन किया है उसे पन्त जी के महामानवत्व में श्रद्धा होगी और जिसने भी वादरहित दृष्टि से पन्तसाहित्य का अनुशीलन किया होगा, उसे उनके काव्य में भारतीय वाङमय की उदात्तता और लोकमंगलकारी दृष्टि की छवि मिली होगी, और यही विभूतियाँ उन्हें साहित्य के शिखर पर प्रतिष्ठित करने में समर्थ हैं।

सम्भव है कुछ आलोचक 'पन्तजी' को समकालीन साहित्य की कसौटी पर खरा न पाएँ, और आज की समकालीन समालोचना की दृष्टि से उसे अस्पृश्य समझें जैसा कि एक बार श्री वी० डी० यन० साही ने लोकायतन के सम्बन्ध में कहा था। इस सम्बन्ध में एक चर्चा का उल्लेख मैं करना चाहता हूँ। १० अप्रैल १९९६ को प्रयाग संग्रहालय में 'समकालीन आलोचना' पर एक परिचर्या का आयोजन किया गया था, जिसके मुख्य वक्ता डॉ० नामवर सिंह, सुप्रसिद्ध समालोचक थे।

परिचर्या का प्रारम्भ करते हुए उन्होंने जिस समकालीन कविता का उदाहरण दिया उसके रचनाकार स्व० श्री अज्ञेय जी है। रचना इस प्रकार है—

'एक तनी हुई रस्सी है, जिस पर मैं नाचता हूँ।
जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूँ
वह दो खम्भों के बीच है।
रस्सी पर मैं जो नाचता हूँ
वह एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक का नाच है

दो खम्भों के बीच जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूँ।
उस पर तीखी रोशनी पड़ती है
जिसमें लोग मेरा नाच देखते हैं।
न मुझे देखते हैं, जो नाचता है
न रस्सी को, जिस पर मैं नाचता हूँ
न खम्भों को, जिन पर रस्सी तनी है
न रोशनी को ही जिसमें नाच दीखता है :
लोग सिर्फ नाच देखते हैं।
पर मैं जो नाचता हूँ
जो जिस रस्सी पर नाचता हूँ
जो जिन खम्भों के बीच है
जिस पर जो रोशनी पड़ती है
उस रोशनी में उन खम्भों के बीच उस रस्सी पर
असल में मैं नाचता नहीं हूँ।
मैं केवल उस खम्भे से इस खम्भे तक दौड़ता हूँ
कि इस या उस खम्भे से रस्सी खोल दूँ
कि तनाव चुके और ढील में मुझे छुट्टी हो जाये—
पर तनाव ढीलता नहीं
और मैं इस खम्भे से उस खम्भे तक दौड़ता हूँ
पर तनाव वैसा ही बना रहता है
और वही मेरा नाच है जिसे सब देखते हैं
मुझे नहीं
रस्सी को नहीं
खम्भे नहीं
रोशनी नहीं
तनाव भी नहीं
देखते हैं—नाच।'

यह कविता उनकी दृष्टि में समकालीन संवेदना का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसी
साथ ही उन्होंने महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान का उदाहरण भी दिया, औ
उसके साथ 'अभिज्ञान शाकुन्तल' की भी तुलना करते हुए कहा कि महाभारत
शकुन्तलोपाख्यान को काव्य नहीं माना गया और उसी कथा को कालिदास द्वार
लिखे जाने पर उसे सर्वोत्तम काव्य माना गया जब कि महाभारत का शकुन्तलो
भी काव्य है इसके अतिरिक्त भी कई उदाहरणों से उन्होंने अपनी बात

को स्पष्ट करने का प्रयास किया। उनके इस तर्क से कई विद्वानों ने अपनी असह्-मति भी प्रकट की।

इस सम्बन्ध में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि डॉ० नामवर सिंह का दृष्टिकोण सर्वथा सही है, यह नहीं कहा जा सकता। आज की कविता जो अज्ञेय जी ने लिखी है और 'तनी हुई रस्सी पर नाचने' की जो बात समीक्षक की दृष्टि में आई है वह भले ही अभिव्यक्ति की एक नई विधा हो, किन्तु काव्य की दृष्टि से वह कोई नई बात नही है।

सूरदास जी ने इसी बात को बहुत पहले कहा है—

'अब हौं नाच्यों बहुत गोपाल,
काम-क्रोध को पहिर चोलना
कण्ठ विषय की माल'

तनाव और नाचने की त्रासदी दोनों कविताओं में है। एक दो खम्भों के बीच तनी हुई रस्सी पर तेज रोशनी में नाचता है तो दूसरा अपनी व्यथा की अभिव्यक्ति अपने गोपाल से करता है, जो काम-क्रोध के चोलने और विषय की माल से उसे मुक्त करा सकता है। मनोव्यथा का वर्णन दोनों कवियों ने किया है, किन्तु दोनों की भाषा में अन्तर है, क्योंकि भाषा और प्रतीक समय के साथ परिवर्तित होते रहते है। किन्तु 'तनी हुई रस्सी' की अपेक्षा, 'अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल' अधिक भावमय है। कविता भाव की भूखी है शब्दों के रस्साकसी की नहीं। यही बात महाकवि कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञान-शाकुन्तल के पक्ष में भी कही जा सकती है। जो कवि जितना भावप्रवण है वह उतना ही सशक्त और लोकमानस के नज-दीक है। लोकमानस पर सूरदास की कविता का असर, अज्ञेय की कविता से अधिक है और इसीलिये इतने अन्तराल के बाद भी आज वह जीवित है।

कविता भी वाणी का तप है। श्रीमद्भागवत गीता में वाङ्मय की कसौटी के लिये कहा गया है कि,

'अनुद्वेगकरं वाक्यं, सत्यं प्रियहितं च यत्
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मयं तप उच्चयते'

(गीता १७/१५)

जो काव्य 'गीता' की इस परिभाषा पर सही नहीं उतरता उसे काव्य या साहित्य की भाषा कहना उचित नहीं है। उसे सपाट बयानी या आक्रोश की संज्ञा तो दी जा सकती है किन्तु काव्य बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। काव्य के लिये तो वाणी का तप आवश्यक है।

सुमित्रानन्दन पन्त की कविता में वाणी का तप है। स्वाध्याय और अभ्यास में उनका पूरा जीवन बीता है। सभी के लिए उन्होंने सत्य, प्रिय और शिव का संदेश दिया है। आज हमें इन्हीं आदर्शों की छाँह में बैठने की आवश्यकता है।

विविध प्रदूषणों के चक्रवात् में फँसे इस युग को जिस चेतना की आवश्यकता है उसकी प्रचुर मात्रा पन्त जी के साहित्य में विद्यमान है। युगद्रष्टा महाकवि ने जिस मानव-समाज की कल्पना की है, उसकी भूमिका तैयार हो रही है। सम्पूर्ण विश्व आज शान्ति और प्रदूषण-मुक्त पर्यावरण की तलाश में है। साहित्यक-प्रदूषण ने भी कविता को आज लोकमानस से दूर कर नारेबाजी तक सीमित कर दिया है। आशा है नया युग कविता का नया अंकुर उगाकर समाज को नई दृष्टि देगा और महाकवि पन्त के स्वर में—

'रह पाएगी नहीं
मनुज के प्रति विरक्ति तब
धरा-प्रीति में परिणत होगी
मूर्तभक्ति जब।'

सुमित्रानन्दन पंत छायावाद के ऐसे महाकवि हैं जो विशिष्ट सौन्दर्यबोध, प्रकृति चित्रण तथा कल्पना वैभव के कारण आधुनिक हिन्दी कविता में अपनी अलग पहचान बनाते हैं। उन्होंने समकालीन स्पन्दनों को अपने काव्य मे सर्जनात्मक सूक्ष्मता के साथ अंकित किया। सामाजिक, राजनीतिक, समग्र रूप से सांस्कृतिक जड़ता के विरुद्ध परिवर्तन की अदम्य लालसा से उद्भूत उनकी काव्य संवेदना युग-चेतना की नूतन संभावनाओं को समाहित करती हुई जीवन के नये आयामों को समेटती है। पंत जैसे महाकवि के व्यापक काव्य फलक पर उरेहे हुए चित्रों की व्यंजना को ग्रहण करने की चेष्टा कई वरिष्ठ आलोचकों द्वारा की गयी है। किन्तु किसी कवि की संवेदना को समानधर्मा कवि जिस तरह से अनुभूत करने तथा पाठकों को उसमें भागीदार बनाने की कोशिश करेगा वह आलोचना का एक भिन्न रचनात्मक तथा प्रभावात्मक धरातल होगा। पंडित राजाराम शुक्ल हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि, रचनाकार हैं, उन्होंने अपने काव्य-गुरु पंत को नए भावबोध एवं नयी दृष्टि से विश्लेषित तथा मूल्यांकित किया है। पाठकों के लिए आलोचना का यह रूप रसात्मक, तथा आस्वादनीय होगा तथा 'कवि पंत' काव्य के नये क्षितिज के मोहक आलोक का उद्घाटक भी।

डा० रामकिशोर शर्मा
रीडर हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद